तीर्थरक्षक सेठ शांतिदास

ऋषभदास रांका

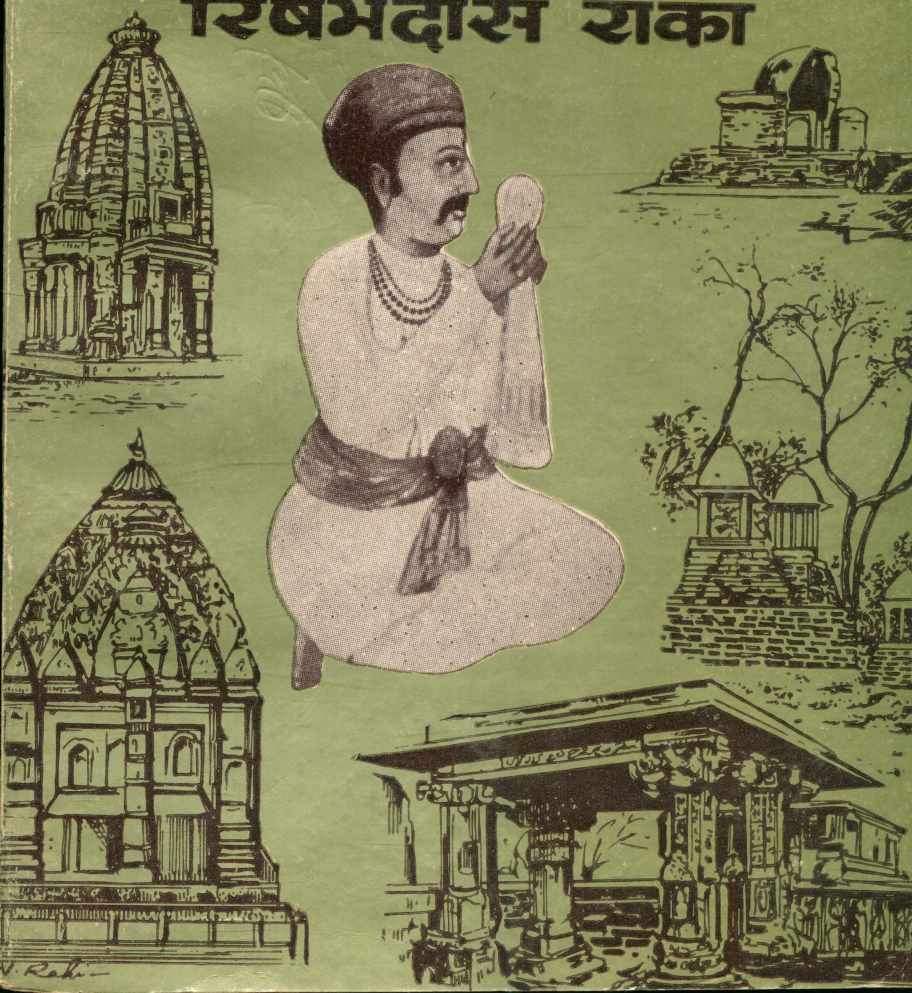

तीर्थरक्षक सेठ शान्तिदास

लेखक
रिषभदास रांका

प्रकाशक
रांका चेरिटेबल ट्रस्ट, बम्बई–१

☐ **तीर्थरक्षक सेठ शान्तिदास**

☐ **लेखक**
रिषभदास रांका

☐ **प्रथमबार**
वि० सं० २०३४
वीर निर्वाण सं० २५०४
ई० सन् १९७८, जनवरी

☐ कस्तूरभाई लालभाई चैरिटी ट्रस्ट के आर्थिक सौजन्य से

☐ **प्रकाशक**
चन्दनमल 'चाँद'
रांका चेरिटेबल ट्रस्ट
C/o मर्केण्टाइल बैंक बिल्डिंग
७वीं मंजिल, ५२/६०, महात्मा गांधी रोड
फोर्ट, बम्बई-४०० ०२३

☐ **मुद्रक**
श्रीचन्द सुराना के लिए
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स,
दरेसी २, आगरा-२८२००४

☐ **मूल्य** : दो रुपया पचास पैसा मात्र

प्रकाशकीय

स्व० ऋषभदासजी रांका की अप्रकाशित कृति 'तीर्थरक्षक सेठ शांतिदास' राँका चेरिटेबिल ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित करते हुए हम उनके प्रति यह एक विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। स्व० राँकाजी का व्यक्तित्व बहुमुखी था। उन्होंने राष्ट्र, समाज एवं साहित्य आदि अनेक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण सेवाएँ दी हैं।

भारतीय जन-जीवन, समाज एवं शासन-व्यवस्थाओं में जैनों के महत्त्वपूर्ण योगदान का उल्लेख इतिहासकारों ने यथोचित नहीं किया है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। जैनों का अतीत से वर्तमान तक सामाजिक, धार्मिक, शासन-व्यवस्था आदि विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वस्तुतः हिंदू राजाओं एवं मुगलबादशाहों के दरबार में भी जैन आचार्यों, श्रावकों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। अहिंसा और करुणा के संदेश से प्रभावित होकर समय-समय पर राजाओं-बादशाहों ने जो फरमान निकाले उनसे इतिहास के विद्यार्थी परिचित हैं।

लेखक स्व० रांकाजी ने सेठ शांतिदास जौहरी की जीवन-गाथा के माध्यम से इतिहास के अछूते प्रसंगों को उजागर करते हुए उस युग में जैनों के प्रभाव की एक झलक प्रस्तुत की है। पुस्तक के संबंध में विस्तृत चर्चा करनी अपेक्षित नही हैं क्योंकि वह पाठकों के हाथों में है। इस पुस्तक के प्रकाशन का पूरा व्यय **श्री कस्तूरभाई लालभाई चेरिटी ट्रस्ट,** से प्राप्त हुआ है। हम कस्तूरभाई लालभाई चेरिटी ट्रस्ट के इस सहयोग के लिए आभारी हैं।

चंदनमल 'चाँद'

मंत्री

प्राक्कथन

भारतवर्ष के सांस्कृतिक, धार्मिक, और राजनैतिक इतिहास तो प्रचुर परिमाण में लिखे गये और लिखे जारहे हैं; किन्तु भारतीय समाज में, शासन-व्यवस्थाओं में तथा धार्मिक परम्पराओं में जैनों का कैसा-क्या योगदान रहा, इस विषय में विशेष दिलचस्पी इतिहास प्रणेताओ ने नहीं दिखाई। एक प्रकार की उपेक्षा भी रही। जैनधर्म को नास्तिक धर्म मानने के कारण उसके ऐतिह्य महत्त्व को नगण्य मानने का प्रयास भी रहा। दूसरी ओर जैनों के अपने घर की स्थिति भी फूट और कलह के कारण टूटी-सी रही। साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण एक-दूसरे के वाङ्मय तथा ऐतिहासिक माहात्म्य को समझने तथा उसका मूल्यांकन करने का प्रयास भी नहीं किया गया। यह सब तो है ही, लेकिन इतिहास-लेखन की दूषित अथवा पराधीन मनोवृत्ति के परिणामस्वरूप भी अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने नहीं आ सके। प्रसन्नता की बात है कि अब इतिहास को, विश्व-समन्वय के सन्दर्भ में, नवीन तथ्यों के प्रकाश में देखा जारहा है और अनेक मनीषी अनुसन्धान-कार्य में लगे हैं।

पौराणिक प्रमाणों को साक्ष्य के रूप में स्वीकार न भी करें तो भी भारतवर्ष में जैनों के महत्त्व का प्रारम्भ बहुत पहले चला जाता है। श्रीकृष्ण के चचेरे बन्धु जैनों के बाईसवें तीर्थंकर हो गये हैं जिनके कारण गुजरात सांस्कृतिक दृष्टि से निरामिष आहारी बना रहा। ईसा के नौ सौ वर्ष पूर्व वाराणसी में अश्वसेन राजा का राज्य था जिनके पुत्र पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थंकर के रूप में विख्यात हैं और बिहार की तीर्थ भूमि पार्श्वनाथ पहाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् महावीर के प्रभाव से अनेक क्षत्रिय नृपति जैनधर्मानुयायी थे। इन सब की अनेक रोमांचकारी कथाएँ जैन साहित्य में सुरक्षित हैं। महावीर के पश्चात् सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य, बिंदुसार, अशोक तथा सम्प्रति जैन ही थे। सम्प्रति ने तो विदेशों तक में जैनधर्म का प्रसार किया था। सिकन्दर महान् के साथ भी जैममुनि-विदेश गये थे।

उत्तर भारत में तो जैन राजाओं तथा राज-पुरुषों का महत्त्व रहा ही, दक्षिण भारत में तो जैन राजाओं का राज्य लगभग एक हजार वर्ष तक रहा और उनके धर्म-प्रेम के कारण अनेक गौरवपूर्ण शिल्पकृतियाँ, मंदिर तथा मूर्तियाँ निर्मित हुईं। गंग, कदम्ब, पल्लव, चौलुक्य, राष्ट्रकूट नरेशों का काल वास्तव में भारतीय प्रजा के लिए सुख-सौजन्य का काल था। गुजरात का राजा कुमारपाल तथा प्रसिद्ध श्रेष्ठी वस्तुपाल तेजपाल को कौनसा इतिहास भूल सकता है।

केवल हिन्दू राजाओं पर ही जैनों का प्रभाव रहा हो सो बात नहीं। मुगल तथा मुस्लिम शासकों तथा बादशाहों पर भी जैनों का पर्याप्त प्रभाव रहा है। सम्राट् अकबर जैन साधुओं से अत्यधिक प्रभावित था और यही कारण है कि मुस्लिम-शासनकाल में गाय, बैल, भैंस, भैंसों आदि के वध पर रोक लगा दी थी। यह हम आसानी से समझ सकते हैं कि यह काम उन धर्मान्ध कट्टर गो-माँस भक्षक शासकों से करवाना कितना कठिन था, जबकि आज भारत में, ३० वर्ष की आजादी के बाद भी गोवध बन्दी नहीं हो पा रही है।

मुस्लिम सुलतान, सूबेदार तथा शासक मूर्ति-पूजा के कट्टर विरोधी थे तथा मंदिरों को ध्वस्त कराना धर्म मानते थे, किन्तु ऐसे प्रमाण मिले हैं कि जैनों ने अपने कौशल तथा प्रभाव से तीर्थों तथा मन्दिरों की रक्षा की और उनको ध्वस्त न करने के फरमान भी जारी करवाने में सफल रहे। ऐसे धर्म-प्रेमी महानुभावों, श्रेष्ठियों की गाथाएँ अब उपलब्ध हैं; किन्तु हमारा साम्प्रदायिक रुझान भी बड़ा अद्भुत है! अपने ही घर के छिपे इन रत्नों को हम इसलिए नहीं अपनाते कि उनका सम्प्रदाय भिन्न रहा, गच्छ भिन्न रहा या प्रान्त भिन्न रहा।

इस संकीर्ण वृत्ति के कारण समग्र जैन इतिहास अंधेरे में रह गया और समाज को अपार हानि उठानी पड़ी। कितने लोग जानते हैं कि अकबर तथा जहाँगीर के शासन काल में जैनों ने कितने धार्मिक फरमान निकलवाये थे और धर्म-तीर्थों की रक्षा की थी। महाकवि बनारसीदास तो अकबर की मृत्यु का समाचार सुनकर ऊपर की मंजिल की खिड़की से सड़क पर गिर पड़े थे जिससे उनके सिर में गहरी चोट आ गयी थी। उनकी आत्मकथा से उस काल की अनेक महत्त्वपूर्ण बातें प्रकट होती हैं।

संयोग से मेरे हाथ एक पारसी सज्जन कॉमिसिरियेट साहब का गुजरात का इतिहास लगा। उसमें कुछ ऐसे तथ्य मिले हैं जिनसे पता चलता है कि अकबर पर जैनों का प्रर्याप्त प्रभाव था। ऐसी ही प्रचुर सामग्री श्वेताम्बर जैन साहित्य में भी है। दिगम्बर साहित्य में भी ऐसी सामग्री होने की बहुत सम्भावना है। आवश्यकता इस बात की है कि यह सब सामग्री जनता के समक्ष प्रस्तुत हो।

इस सन्दर्भ में सेठ शांतिदास जौहरी का उल्लेख जैनों के लिए प्रेरणास्पद है। उन्होंने अपने समय में जैन मन्दिरों का रक्षा के तथा पशु-वध बन्दी आदि के जो कार्य मुगल शासकों से करवाये वह कितना कठिन था, यह इतिहास पढ़ने से ही ज्ञात हो सकता है। औरंगजेब अपने समय का अत्यन्त असहिष्णु और दुराग्रही माना जाता है। लेकिन तथ्य यह नहीं है। यह अवश्य है कि वह धर्मान्ध था तथा मूर्तियों को तोड़ने तथा मन्दिरों को नष्ट करने में वह धर्म मानता था। सेठ शांतिदास को इसका अनुभव भी था और वे औरंगजेब की मनोवृत्ति से परिचित तथा फिर भी सेठ शांतिदास ने कुशलतापूर्वक उसे अपने विश्वास में लिया और सैकड़ों मन्दिरों की रक्षा के फरमान उससे जारी करवाये। सेठ शांतिदास द्वारा निर्मित एक मन्दिर को औरंगजेब ने अपनी युवावस्था में मस्जिद में परिवर्तित करवा दिया था। किन्तु सेठ शांतिदास ने बाद में उसी से यह आदेश निकलवाया कि इसका उपयोग मन्दिर के रूप में हो तथा वहाँ रहने वाले मौलवी-फकीर आदि हट जावें। मन्दिर से निकाले गये सामान को लौटाने का आदेश भी निकाला गया। यह तो समाज की अदूरदर्शिता रही कि इस मन्दिर को भ्रष्ट माना गया और उसका उपयोग नहीं किया गया। फलतः यह खण्डहर बनकर रह गया। यह खण्डहर आनन्द जी कल्याणजी पेढ़ी के कब्जे में है।

आवागमन के आज की भांति द्रुतगामी वैज्ञानिक वाहनों के अभाव में, उन दिनों यात्राएँ बड़ी कठिन होती थीं। सेठ को जवाहरात के कार्य के सिलसिले में अनेक बार दिल्ली का प्रवास करना पड़ता था। सुरक्षा के लिए सेना भी रखनी पड़ती थी। यह भी कम साहस का काम नहीं था। ऐसे भी अवसर आये जब सेठ को मुगल सेनाओं से मुकाबला तक करना पड़ा।

सेठ का परिवार शक्ति सम्पन्न था, श्रीमंत था और राजनीति कुशल भी था। इन्होंने केवल अपनी ही रक्षा नहीं की, बल्कि नगर और समाज की भी रक्षा की। ये सब ऐसी बातें हैं जिनका सही मूल्यांकन इतिहास को सही दृष्टिकोण से तथा गहराई से देखने पर ही सम्भव है।

प्रसन्नता की बात है कि अब इतिहास के ये अछूते पृष्ठ और स्तर उजागर होते जा रहे हैं। यदि उन्मुक्त दृष्टिकोण से, वैज्ञानिक ढंग से इतिहास के संशोधन आदि में ध्यान दिया जाय तो निकट भविष्य में हमारी नई पीढ़ी को अपने पूर्वजों के इतिहास का नया ही दर्शन होगा।

अनुक्रम

तीर्थरक्षक सेठ शान्तिदास	१
नगरसेठ लक्ष्मीचंद	२५
सेठ खुशालचन्द	३७
सेठ बखतशाह	५१
सेठ हेमाभाई	५४
सेठ लालभाई	५७

1

तीर्थरक्षक सेठ शान्तिदास

एक अश्वारोही मेवाड़ के जंगलों की ओर शिकार के लिए तेजी से दौड़ा जा रहा है। सामने से हरिणों के झुंड को आता देख वह घोड़े से उतरा और अपने आपको छुपाता हुआ पैदल ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ से वह शिकार पर ठीक निशाना साध सके। प्रत्यंचा चढ़ा कर मृगों के समूह पर छोड़ा। तीर के लगते ही एक मृगछौना करुण-क्रन्दन के साथ ढेर-हो गया। मृग-समूह पवन-वेग से भाग गया, किन्तु मृत छौने की माता मृत बच्चे को जीभ से चाट रही थी। वह क्षत्रिय मृगशिशु के पास पहुँचा और तीर को उसकी देह से निकाल कर भाथे में रख लिया। मृगी अब भी अपने बच्चे की ओर अश्रुपूरित नेत्रों से देख रही थी। शिकारी मृत शावक को ले घोड़े पर सवार हुआ और चल दिया। हरिणी उसके पीछे-पीछे दौड़ रही थी। हरिणी की करुण मुद्रा और पीछे-पीछे दौड़ना देख शिकारी के मन में हलचल मच गई। उसके मन में करुणा जाग गयी और द्वन्द मच गया। घोड़े को तेजी से दौड़ाकर हरिणी को पीछे छोड़ दिया, किन्तु उसका दयार्द्र चेहरा उसके नजरों से हटता ही नहीं था। वह व्यग्र हो गया।

उसका बाहरी मन कहने लगा कि मैं क्षत्रिय हूँ, पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमारे पूर्वज शिकार करते आये हैं। इस तरह हमें विचलित नहीं होना चाहिए। किन्तु अन्तर से आवाज आई कि मृगशावक का शिकार करना अच्छा नहीं हुआ। बेचारी हरिणी का मुख कितना करुण, म्लान था। मैंने उसके बच्चे के प्राण लेकर माँ को कितना

दुःखी बनाया। मैंने एक कोमल कली अपने पैरों तले रौंद डाली। इन विचारों को मन से निकालने का उसने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वह करुण दृश्य नजरों से ओझल होता ही न था।

राह में वृक्ष की छाया में एक जैनमुनि अपने शिष्य समूह के साथ शांत भाव से विराजमान थे। उनकी मुखमुद्रा देखकर अश्वारोही को कुछ शांति मिली। उसने सोचा, कि क्यों न अपने मन की वेदना, अपने मन का द्वन्द्व, इनके समक्ष रक्खूं। घोड़े से उतरा, घोड़े को वृक्ष से बाँधा और मुनि के समक्ष जाकर नमन करके बैठ गया।

उसे उदास और खिन्न देखकर संत प्रेम से बोले—"वत्स, तुम चिंतामग्न दिखाई देते हो। कहाँ से आये हो और कहाँ रहते हो ?"

"महाराज, मैं पड़ोस के ग्राम का जागीरदार हूँ। शिशोदिया क्षत्रिय हूँ। हम और हमारे पूर्वज सदा से शिकार करते आये हैं। आज भी मैं शिकार पर गया था। मृगशावक का शिकार किया, पर उसकी माँ का करुणमुख देखकर मेरे मनमें भाव जगे कि मैंने जो किया, वह ठीक नहीं किया। आप ही बताइए कि मैंने यह कुल-परम्परा से चला आया आखेट-कर्म करके ठीक किया या नहीं"?

मुनि शांत-गंभीर स्वर में बोले, "वत्स, तुम्हारे चित्त में जो हलचल मची है वह ठीक है। सभी जीव सुख से जीना चाहते हैं। कोई भी मरना नहीं चाहता। हम भी मृत्यु और दुःख नहीं चाहते। हमारे शिशु के प्राण कोई ले तो हमें जो वेदना होगी वही उस मृगी को हुई। उसके स्थान पर हम हैं ऐसी कल्पना करके इस निंद्य कर्म का त्याग करना ही उत्तम है।"

"पर महाराज, यह तो क्षत्रियों का धर्म माना जाता है।"

"वत्स, क्षत्रिय का धर्म है, दूसरों की रक्षा करना। दूसरों को रक्षा करते हुए अपने प्राणों का विसर्जन करना। यही सच्चे वीरों

का धर्म होता है, न कि दूसरे निरपराध जीवों का घात करना—अधर्म है।"

"पर महाराज हमारे पुरोहित धर्मगुरु तो मृगया को धर्म कहते हैं। इसे क्षत्रियों का धर्म बताते हैं।"—वह बोला।

"किन्तु वत्स, पुरोहित कुछ भी कहें। तुम्हारा हृदय क्या कह रहा है? जब तुम किसी को प्राण नहीं दे सकते—मृत को जीवित नहीं कर सकते तो दूसरे के प्राण लेने, ऐसे निरपराध प्राणी के प्राण लेने में क्या धर्म हो सकता है? जो तुम्हें बताया गया, वह धर्म नहीं अधर्म है।"—शांत स्वर से मुनिराज बोले।

क्षत्रिय वीर पर मुनिराज की वाणी का प्रभाव हुआ। उसने मुनिराज को नमस्कार कर अपने गाँव में आने का आमंत्रण दिया। मुनिराज अपने शिष्य समुदाय के साथ उस क्षत्रिय के ग्राम में गये। उनके त्यागमय सदाचारी जीवन का उस क्षत्रिय पर ही नहीं, सारे परिवार पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने उपदेश में अभयदान का महत्त्व समझाया। वीरता की सही व्याख्या की, जीवन जीने की कला भी सिखाई। जिसे सुनकर सारा परिवार बहुत ही प्रभावित हुआ और उस जागीरदार ने सपरिवार अहिंसा धर्म स्वीकार किया। तथा मुनिजी से श्रावक के बारह व्रत धारण किए।

ठाकुर पद्मसिंह के क्षत्रिय परिवार ने क्षत्रिय की विशेषताओं के साथ अहिंसा, संयम और विवेक को अपनाया। उनमें सद्गुणों की वृद्धि हुई। पद्मसिंह की पाँच पीढ़ियाँ मेवाड़ में अपने गाँव में सुख से रहीं, किन्तु मुस्लिमों के आक्रमण ने छट्ठी पीढ़ी के सहस्रकिरण की जागीरदारी छीन ली। उसे अब उस गाँव में सामान्य नागरिक की तरह मुस्लिमों के अधीन रहने की अपेक्षा ग्राम-त्याग करना ही उचित लगा और अपने परिवार को लेकर वह अहमदाबाद पहुँच

गया। सहस्रकिरण की उम्र १९-२० की थी, पर इस आपत्ति में भी उसमें दीनता नहीं थी। वह एक मारवाड़ी जौहरी की दुकान पर पहुँचा।

जौहरी ने पूछा—"भाई, कहो क्या काम है ?"

सहस्रकिरण बोला, "सेठजी, मैं काम ढूंढने राजस्थान से आया हूँ। साथ में परिवार है, जो धर्मशाला में है। यदि काम करने का अवसर दें, तो मैं आपके यहाँ काम करना चाहता हूँ।"

जौहरी ने कहा—"तुम वेतन क्या लोगे और क्या काम कर सकोगे ?"

सहस्रकिरण बोला—"सेठजी, मैं आपसे वेतन की बात नहीं कहता। आप मेरा काम देखिए, फिर आपको मेरे काम से जैसा संतोष हो, उस प्रकार वेतन दें।"

जौहरी विवेकी और मनुष्य के पारखी थे। सहस्रकिरण की बात का उन पर प्रभाव पड़ा। उन्होंने परीक्षा लेने के लिए कुछ द्रव्य देकर कहा—"यह थैली लेकर जाओ, घर में पाँच लोग हैं, शाकसब्जी लेकर आओ।"

सहस्रकिरण बाजार गया। अच्छे और ताजे शाक फल देखकर मोल-भाव करके खरीदे और सेठजी के पास पहुँचा। सेठजी ने देखा, शाक बढ़िया है और दाम भी ठीक ही लगे, तो उनका सहस्रकिरण की होशियारी पर विश्वास तो हुआ, पर और भी परीक्षा करनी थी। कहा, "जाओ दिल्ली दरवाजे जाकर देखो अनाज की कितनी गाड़ियाँ आयी हैं।"

सहस्रकिरण कुछ ही देर में लौटकर बोला, "एक सौ ग्यारह गाड़ियाँ आयी हैं जिनमें ४१ गेहूँ की, ५२ चावल की और १८ बाजरा तथा मूंग की हैं।" सेठ ने फिर पूछा—"आज क्या भाव निकले ?" तो झट से सहस्रकिरण ने सब चीजों के भाव बता दिये और माल के नमूने भी सामने रख दिए।

सेठ रत्नों के तो पारखी थे ही, पर मनुष्य के भी परीक्षक थे। सहस्रकिरण की चातुरी देखकर उसे रख लिया। परिवार को रहने की जगह दे दी।

जौहरी जी बड़े ही समझदार थे। सहस्रकिरण का चातुर्य देखकर उसे अपने व्यवसाय की जानकारी देनी शुरू की। हीरा, माणिक, नीलम आदि की परीक्षा और उसका मोल करना सिखाया। युवक चतुर और बुद्धिशाली था ही; सेठजी के अनुभव ने उसे कुछ ही वर्षों में कुशल बना दिया। उसका-चातुर्य एवं प्रामाणिकता देखकर सेठजी उसे व्यापार के निमित्त देश के विभिन्न भागों में भेजने लगे। सेठजी के कोई पुत्र नहीं था, एक पुत्री थी जिसके साथ सहस्रकिरण का विवाह करके सारा व्यापार सौंपकर वे स्वयं अपना समय धर्म-ध्यान में बिताने लगे।

सहस्रकिरण को एक पुत्र हुआ, जिसका नाम वर्धमान रखा गया। दूसरा विवाह करने पर दूसरी पत्नी से शांतिदास का जन्म हुआ। ये दोनों भाई बड़े समझदार और सुयोग्य थे। शांतिदास ने गुजराती के साथ-साथ फारसी की शिक्षा भी प्राप्त की और व्यापार के लिए देश-विदेश का प्रवास भी किया। वर्धमान अहमदाबाद में रहकर पेढ़ी का काम संभालता और शांतिदास देश-विदेश का काम करते। मोती खरीदने श्रीलंका जाते तो बर्मा से माणिक लाते। गोलकोंडा से हीरे की खरीदी होती। फिर देश के विभिन्न हिस्सों में प्रवास कर राजाओं, नवाबों तथा बादशाह के दरबार में उनकी बिक्री करते। शांतिदास का स्वभाव शांत था, वाणी में मिठास, व्यवहार में प्रामाणिकता और सौजन्य था। कभी किसी को ठगने का विचार ही उसके मन में नहीं आता था। वृत्ति धार्मिक होने से प्रवास में जाते तो तीर्थों में अवश्य पहुँचते। संतों का सत्संग करते, व्रत-नियमों का

पालन करते। उनमें धर्म-श्रद्धा इतनी अटूट थी कि देव-दर्शन के बिना अन्न-जल तक ग्रहण नहीं करते थे।

वे बादशाह अकबर के दरबार में भी अपना माल लेकर पहुँचते। एक बार बादशाह ने दरबार में सभी जौहरियों को आमंत्रित किया। जवाहरात खरीदने थे। जवाहरात खरीदते-खरीदते वे जवाहरात के अच्छे परीक्षक भी बन गए थे।

बादशाह ने जब जौहरियों के समक्ष एक हीरा रखा और मुख्य जौहरी पन्नालालजी को वह हीरा बताकर कहा—"पन्नालालजी, आप तो अनुभवी जौहरी हैं, बताइए उसकी वाजिब कीमत क्या होनी चाहिए ?"

पन्नालालजी ने हीरा हाथ में लिया, वह शुक्र-तारे की तरह चमक रहा था। वह ३५० रत्ती का हीरा था। पन्नालालली और अन्य सब जौहरियों ने बहुत बारीकी से देखा। उसका तेज, सुन्दर आकार और उसके रूप को देखकर आश्चर्य चकित हुए, लेकिन मूल्य आंकने में कठिनाई महसूस करने लगे। सभी जौहरी आपस में बातें तो करते, किन्तु उसका मूल्य आंकने में अपने को असमर्थ पाते। जौहरी वर्ग उसका ठीक मूल्य नहीं बता सके।

पन्नालालजी बोले, "जहाँपनाह, हम लोग बचपन से जवाहरात का काम करते आये हैं, लेकिन इस हीरे का ठीक-ठीक मूल्य आंकना हमारे लिए कुछ कठिन है।"

बादशाह को बड़ी निराशा हुई। इतने में एक युवक पन्नालालजी के पास आकर बोला—"पन्नालालजी, क्या मैं इस हीरे को देख सकता हूँ ?"

क्यों नहीं, अवश्य देखिए और पन्नालालजी ने हीरा शांतिदास के हाथ पर रख दिया। शांतिदास ने हीरा हाथ में लेकर उसका

तोल किया। उसे छाया और सूर्य-प्रकाश में देखा। उसमें कोई दोष तो नहीं, यह ठीक से जाँचा। काँच के द्वारा निरीक्षण किया, सभी कोण, उसकी ऊँचाई तथा आकार का माप किया। और कहा—"जहाँपनाह, हुकम हो तो मैं इसका मूल्य बता सकता हूँ।"

बादशाह खुश होकर बोला,—"हाँ, बताओ।"

शांतिदास ने कहा—"सात लाख मुद्रा।"

बादशाह बोला—"किस हिसाब से ?"

शांतिदास ने अपने बस्ते से एक ताड़पत्र की पोथी निकालकर बादशाह के समक्ष रखी जो अपभ्रंश भाषा में एक साधु द्वारा "रत्न परीक्षा" पर लिखी थी। शांतिदास ने उस किताब से मूल्यांकन की विधि बताई। और किस हिसाब से मूल्य किया यह बताया। अकबर बहुत खुश हुआ और काश्मीर की कीमती शाल अपने हाथ से शांतिदास को अर्पित की और शाही जौहरी के रूप में नियुक्ति की।

बादशाह अपनी आवश्यकता के जवाहरात शांतिदास से खरीदने लगे। उनकी प्रामाणिकता और सद्-व्यवहार से व्यापार में बहुत उन्नति हुई। जौहरी शांतिदास को रनिवास में जाकर जेवर बताने की इजाजत थी। बादशाह और बादशाह की बेगमें ही नहीं, अमीर उमराव भी उनसे खरीद-फरोख्त करते। कुछ समय में तो वह प्रसिद्ध जौहरी बन गए। बहुत धन कमाया। इस समय शांतिदास मात्र २५ साल के युवक ही थे। पर उनके शील-स्वभाव के कारण उन्हें बेगमों का विश्वास प्राप्त था।

शांतिदास देहली में थे उन्हें खबर मिली कि बादशाह तथा बेगम जोधाबाई में सलीम के व्यवहार को लेकर अनबन हो गयी है और रूठकर अहमदाबाद चली गई हैं। जोधाबाई सलीम की माँ थीं। प्रवास में जोधाबाई के साथ कुछ दास-दासियाँ थीं। इसके लिए बादशाह की इजाजत नहीं ली गयी थी। बादशाह के आदेश के वगैर

अहमदाबाद का सूबेदार जोधाबाई का जाहिरा स्वागत भी नहीं कर सकता था और सबसे बड़ी बेगम का अनादर भी करने का साहस नहीं था। इसलिए उसने बीच का मार्ग ढूँढ निकाला। दरबार में सेठ शांतिदास के प्रभाव को सूबेदार जानता था। उसने सेठ शांतिदास को बुलाकर बादशाह की बेगम के स्वागत और निवास का दायित्व सेठ शांतिदास को सौंप दिया।

सेठ शांतिदास तुरन्त ही दिल्ली से आये। अपनी बड़ी हवेली में बादशाह की बेगम को रख वे छोटे मकान में रहने चले गए। यद्यपि जोधाबाई शहंशाह अकबर की बेगम थीं, पर उसे हिन्दू पद्धति से अपना जीवन बिताने की सुविधा उदार अकबर ने दी थी। शांतिदास सेठ को उनका आदरातिथ्य करने में कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने जोधाबाई के स्वागत के लिए खर्च में कोई कसर नहीं रखी। उत्तम साधन सुविधाएँ उपलब्ध कर दीं। सेठ शांतिदास बादशाह के रस्म-रिवाजों से परिचित थे। इसलिए उचित व्यवस्था करने में कठिनाई नहीं हुई। बेगम उनकी व्यवस्था और मेहमानगिरी से बहुत प्रसन्न हुई और बुलाकर कहा—"जौहरीजी, मैं तुम्हारी मेहमानगिरी से बहुत खुश हूँ।"

"बहनजी, यह तो मेरा फर्ज था। मुझ जैसे के घर आपके चरण पड़े, यही बहुत बड़ी बात है।"

"पर इससे बादशाह सलामत नाराज हो गये तो ?" बेगम का प्रश्न था।

शांतिदास सेठ ने कहा, "यदि वे क्षुब्ध हों तो उसकी सजा भुगतने को तैयार हूँ। किन्तु मेहमान की मेहमानतबाजी करना तो मैं अपना फर्ज समझता हूँ।

सहसा बेगम के मुँह से निकल गया—"भाई शांतिदास, तुमने जो कुछ किया उसके लिए एहसानमन्द हूँ।

शान्तिदास सेठ ने कहा, 'बहन, मेरी एक अर्ज है। आप मानेंगी?

'खुशी से कहो, क्या बात है?'

'आपने मुझे भाई कहा, मेरे भी बहन नहीं है, आज आप मेरी बहन बनी हो, अतः मैं कुछ भेंट देना चाहता हूँ।'

'आज मैंने भी तुम्हारे लिए राखी मंगाकर रखी है, इसलिए हाथ आगे बढ़ाओ, मैं राखी बाँधना चाहती हूँ।'

शांतिदास सेठ को जोधाबाई ने राखी बांधकर अपना भाई बनाया। सेठ ने रत्न कंकण लाकर बहन को दिए जो बड़े ही मूल्यवान थे। बेगम गद्‌गद हुई।

शाहजादा सलीम ने पिता के पास जाकर क्षमा माँगी। शाहनशाह ने उसे माफी दी और जोधाबाई को मनाकर लाने के लिए अहमदाबाद भेजा। शाहजादे की उच्छृङ्खलता और मद्यपान बादशाह को पसंद नहीं था। दोनों के बीच उसके मामा मानसिंह ने कुछ सुलह करवाई थी।

शाहजादा अहमदाबाद पहुँचा। जोधाबाई ने उसे सारी बातें बताईं। अब सेठ शांतिदास सलीम के मामा थे।

'अच्छा, अम्माजान हमारे दो मामा हो गए। बड़े मानसिंह और छोटे शांतिदास। बड़े मामा ने अब्बाजान का गुस्सा निकालकर मुझे माफी दिलवाई और छोटे मामा ने तुम्हारी आवभगत कर तुम्हें आराम पहुँचाया। मैं मामा की मोहब्बत की कद्र करता हूँ। आज से मैं उन्हें 'जौहरी मामा' कहा करूँगा। सलीम ने बेगम से कहा।

बेगम दिल्ली पहुँचीं। सारी बातें जानकर बादशाह खुश हुए। अपने दरबार में बादशाह ने सेठ को प्रथम श्रेणी के अमीर के रूप में नियुक्त किया और देहली से पोशाक (सिरोपाव) भेज सत्कार किया। सूबा अजीमखान को हुक्म भेजा कि सेठ शांतिदास को अहमदाबाद का नगर सेठ बनाया जाय।

सेठ शान्तिदास कुशल व्यापारी थे। उन्होंने अपने व्यवसाय से

केवल समृद्धि ही एकत्र नहीं की प्रतिष्ठा भी पाई थी। वे बादशाह के जौहरी थे और आगे चलकर राजा, महाराजा और सूबेदारों को जरूरत के वक्त कर्ज भी दिया करते थे। उनकी हुण्डियाँ देश में ही नहीं विदेशों में भी चलती थीं। वे जौहरी थे, साहूकार थे, राजनीतिज्ञ थे, पर सर्वोपरि वे धर्मनिष्ठ जैन श्रावक भी थे।

केवल अहमदाबाद ही उनका कर्मक्षेत्र नहीं था, अहमदाबाद के जैनमन्दिरों की सार-संभाल और व्यवस्था तो वे करते ही थे, शत्रुंजय, संखेश्वर, तथा केशरियाजी आदि तीर्थों की व्यवस्था और सार-संभाल भी करते थे। गुजरात में मुगलसत्ता के बावजूद सेठ शाँतिदास के प्रभाव तथा व्यवहार-कौशल के कारण जैनमंदिर सुरक्षित थे। उन्होंने समय-समय पर बादशाहों से फरमान प्राप्त कर तीर्थ-रक्षा का प्रबन्ध किया था।

धार्मिक कार्यों में उनकी निष्ठा अपूर्व थी। अपने गुरु मुक्तिसागरजी के पास जाकर धर्मोपदेश सुनते, व्रतनियम लेकर जीवन में संयम और तप का आराधन करते।

सेठ शाँतिदास ने अहमदाबाद, राधनपुर, खंभात और सूरत में उपाश्रय निर्मित कराये और धार्मिक महोत्सवों में काफी खर्च किया। समाज के नेता व नगरसेठ का दायित्व सम्भालते, व्यापारियों के झगड़े निपटाते, पांजरापोल जैसी सार्वजनिक संस्थाओं का संचालन तथा देखभाल भी करते। इन सब कामों में समय और शक्ति लगाकर भी निरपेक्ष भाव से शासन की सेवा करते।

उनके बड़े भाई वर्धमान भी बड़े समझदार व विवेकी थे। वे अपनी पेढी का तथा परिवार का काम देखते तो सेठ शांतिदास राजनैतिक, सार्वजनिक तथा सामाजिक कार्यों की तथा बाहर के कामों की देख-रेख और व्यवस्था करते।

जब १६१२ में सिद्धाचल (शत्रुंजय) की यात्रा पर गये तो देखा कि मंदिर जीर्ण हो गया है, उसका जीर्णोद्धार आवश्यक है, इसलिए वह काम शुरू करके ही लौटे। जब १६१९ तक कार्य पूरा हुआ तो अपने गुरु मुक्तिसागरजी से परामर्श किया और निश्चय हुआ कि संघसहित यात्रा कर प्रतिष्ठा महोत्सव किया जाय। अपने बड़े भाई से भी सलाह ली।

उन दिनों यात्रा के लिए संघ निकालना साधारण बात नहीं थी। आज की तरह प्रवास में सुरक्षा नहीं थी। छोटे-बड़े जागीरदार, ठाकुर, चोर, डाकू आदि लूटने तथा डाका डालने का काम करते थे। लुटेरे और ठग का भी आतंक रहता था। यद्यपि अहमदाबाद का सूबेदार उनका मित्र था और उसने संघ की सुरक्षा के लिए ५०० सैनिक संघ के साथ देने का आश्वासन दिया था, फिर भी सेठ शांति-दास ने संघ निकालने की बात शहनशाह जहांगीर को लिखकर सुरक्षा व्यवस्था के लिए निवेदन किया। जहांगीर ने फरमान भेजकर हर तरह की सहायता संघ को देने की सूचना की। सूबेदार आजिमखाँ ने अपने अधिकारियों व सूबों को आज्ञा दी कि संघ को सब प्रकार से सहायता दी जाय और उसकी सुरक्षा की जाय। तीन हजार गाडियां, घोड़े आदि सवारियों का प्रबन्ध किया गया। संघ में कुल मिलाकर १५००० लोग थे और साथ में साधु-साध्वियाँ भी।

संघ पालिताणा पहुँचा। वहाँ रहने की व्यवस्था तम्बुओं में की गई। जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार किया गया, वहाँ उत्सव किया। भगवान के मूल मन्दिर में दो गवाक्ष बनाये जो अब तक विद्यमान हैं। शुभ मुहूर्त पर नये बिम्बों की प्रतिष्ठा करवाई। शांतिदास सेठ ने स्वधर्मी सेवा व स्वामीवत्सल में खुले हाथों धन खर्च किया। वे केवल भारत के समृद्ध व्यक्ति ही नहीं थे, उदारदानी भी थे। वे ज्यों-ज्यों दान करते लक्ष्मी बढ़ती ही जाती थी।

सिद्धाचल की यात्रा के बाद शांतिदास सेठ के मन में संकल्प जगा कि अहमदाबाद के उपनगर में भव्य जिनालय का निर्माण कराया जाय। अपने बड़े भाई और परिवारवालों से चर्चा की। सभी ने शांतिदास सेठ की योजना का समर्थन किया। अपने गुरु श्री मुक्तिसागरजी के समक्ष अपना विचार रखा। मुनि मुक्तिसागरजी ने शांतिदास सेठ के संकल्प की सराहना की तथा इस धर्म कार्य के लिए अपना शुभ आशीर्वाद दिया।

मंदिर के लिए योग्य स्थान प्राप्त करने के लिए शहंशाह जहाँगीर से परवाना लेने दिल्ली गये, पर बादशाह आगरा में थे, इसलिए वहाँ बादशाह से मुलाकात की। बादशाह जहाँगीर शांतिदास सेठ को देखते ही बड़े प्रसन्न हुए।

शांतिदास सेठ ने कुशलक्षेम के बाद अपनी बात रखी। कहा— "इबादत के लिए मंदिर बनाना चाहता हूँ, जिसके लिए जमीन चाहिए। यह जमीन का नक्शा है। सुबेदार साहब ने हुजूर के कदमों में सिफारिश भी की है, इस दरखास्त पर निगाह कर मिल जाय, यही अर्ज है।"

बादशाह ने नक्शा देखा। देखकर मीर मुंशी को सौंपा और शांतिदास सेठ से कहा, "रुक्का मिल जायगा, आप अपना काम शुरू कर दें।"

सेठ शांतिदास की व्यवस्था-शक्ति, सम्पर्क और प्रभाव अद्‌भुत था। काम यथासंभव जल्दी पूरा करने की अभिलाषा थी। धन की कोई कमी नहीं थी। वहीं आगरा में खुदाई का काम करनेवाले कुशल कारीगरों को बुलाकर अहमदाबाद भेजा। राजस्थान जाकर मकराणे के पत्थर खरीदकर अहमदाबाद भिजवाये। अहमदाबाद पहुँचकर अपनी पेढ़ियों को और परिचितों को पत्र लिखे कि बढ़िया से बढ़िया कारीगरों को भेजो। खंभात से अकीक के पत्थर खरीदे गये।

शिल्पियों से नक्शे तैयार कराये। गुरु मुक्तिसागरजी ने धार्मिक विधि के अनुसार ५२ जिनालय के साथ-साथ भूईहरा (तहखाना) बनाने की भी सलाह दी। शांतिदास सेठ ने अपना अधिकांश समय और शक्ति इसी काम में लगा दी। उनकी कामना थी कि मंदिर उत्कृष्ट हो। देहली से बादशाह का रुक्का भी प्राप्त होगया। सन् १६१२ में मंदिर की शिलान्यास-विधि सम्पन्न हुई और ४ साल में विशाल और कलापूर्ण मंदिर तैयार हो गया। मंदिर का नाम 'मेरुतुंग' रखा गया जिसमें चिंतामणि पार्श्वनाथ प्रभु की मूर्ति प्रतिष्ठित की गई। प्रतिष्ठा वाचकेन्द्र नामक साधु के नेतृत्व में हुई।

शांतिदास सेठ ने उत्कृष्ट कलाकृति बनाने के लिए उदार-हृदय से खर्च किया। उनका मंदिर एक सर्वोत्तम कलाकृति के रूप में प्रसिद्ध हुआ और विदेशियों के लिए प्रेक्षणीय वस्तु बन गई। अनेक विदेशी प्रवासियों ने मंदिर के विषय में लिखा। आल्बर्ट डी० मेन्डेल एलो ने ई० सं० १६३८ में इस मंदिर के विषय में लिखा था—

"यह मंदिर संसार में अति सुन्दर है। मैंने जब अहमदाबाद की यात्रा की तब इस मंदिर के निर्माता सेठ शांतिदास जीवित थे। मंदिर के चारों ओर ऊँची दीवाल थी। बीच में विशाल चौक था। मुखद्वार के पास दो हयाम पाषाण के हाथी थे जिन पर सेठ की मूर्ति थी। मंदिर पर छत थी। दीवारों पर उत्तम कारीगरी वाली बेलें थीं, पक्षियों, अप्सराओं, राज-दरबारियों तथा देवों के चित्र उत्कीर्ण थे। चारों ओर असंख्य देरियों में मूर्तियाँ थीं। मध्य भाग में तीन बड़े गर्भ द्वार और अन्तरमंदिर थे जिनमें भगवान की प्रतिमाएँ थीं। पीतल के दीपक की दीपमाला प्रकाश देती थीं।

प्रसिद्ध फ्रेंच प्रवासी टेबेलियर ने लिखा है—"शांतिदास द्वारा निर्मित मंदिर में प्रवेश करने पर तीन आँगन एक के बाद एक हैं। यह आँगन संगमरमर के पत्थरों के हैं। चारों तरफ गेलरी थी। बूट

(जूते) निकाले बिना हमारा प्रवेश नहीं हो सका था। छत और दीवारों पर तरह-तरह के खम्भात के अकीक के पत्थरों के टुकड़े बैठाकर रमणीयता बढ़ाई गयी थी।

चिंतामणि प्रशस्ति नामक संस्कृत ग्रन्थ में इस मंदिर का वर्णन है : "संवत् १६७८ (सन् १६२१) में वर्धमान और शांतिदास जो विपुल लक्ष्मी के स्वामी थे अपने परिवार के लोगों के साथ अत्यन्त चरित्र सम्पन्न जीवन बिता रहे थे। मंदिरों के निर्माण से भाग्य का विकास होता है इस मंतव्य से महान सुन्दर मंदिर बनाया। यह मंदिर बीबीपुरा में था। मंदिर के द्वार के पास आशीर्वाद के लिए पंच पत्र थे। ऊँची विशाल सीढ़ियाँ मानो स्वर्ग की ओर ले जा रही हो, ऐसा आभास होता था। मंदिर में छः भव्य आवास थे जो मेघनाद, सिंहनाद, सूर्यनाद, रंगमंडप···और गढ़गोत्र इस नाम से पहचाने जाते थे। दो मीनारें और चार मंदिर आसपास थे। नीचे भूमिगृह में मूर्तियाँ स्थापित की गई थीं।

मंदिर सन् १६२५ में तैयार हुआ था और दो दशक शांति से बीते। बादशाह जहाँगीर ने अपने पिता की उदार नीति अपनाई थी। इन दोनों के शासन में हिन्दु प्रजा को कोई तकलीफ नहीं थी। दोनों पर जैन और हिन्दु संतों का प्रभाव था। उनमें धर्मान्धता नहीं थी। वे उदार और सम्यक्दृष्टि से युक्त थे। उनके समय जैन व हिन्दु मंदिर सुरक्षित थे। यदि कोई धर्मान्ध मुस्लिम सरदार या सूबेदार कोई गलती करते तो सजा दी जाती थी। लेकिन जहाँगीर के बाद शाहजहाँ गद्दी पर बैठा। वह अकबर और जहाँगीर की तरह उदार नहीं था, जिससे सेठ शांतिदास को तीर्थों की रक्षा के लिए चिन्ता होने लगी। शत्रुंजय पर उत्तम कलापूर्ण मंदिर थे, जिनकी पवित्रता व रक्षा के लिए उन्हें वहाँ सैनिक रखने पड़ते। गुजरात का सूबेदार आजमखान सेठ शांतिदास का मित्र तथा सुसंस्कारों का था।

प्रजा के साथ सद्व्यवहार के कारण वह प्रजाप्रिय भी था, किन्तु वृद्ध होने से अपना शेष जीवन अल्लाह की बंदगी में बिताना चाहता था। इसलिए अपना ओहदा छोड़कर दिल्ली चला गया। उसकी जगह औरंगजेब सन् १६४५ में सूबेदार बन के आया।

औरंगजेब चुस्त और कट्टर मुस्लिम था, अन्य धर्मस्थानों के लिए उसके हृदय में द्वेष था। उसके मन में अन्य धर्मवालों के प्रति तनिक भी सहानुभूति नहीं थी। वह बड़ा चतुर, प्रपंची, अपना काम करवालेने में होशियार तथा मुत्सुद्दी था। उसमें धर्मान्धता थी। वह क्रूर था और सत्ता शक्ति का उपयोग इस्लामधर्म को बढ़ाने और जो अन्य धर्म हो, उन पर जुल्म गुजारने में करता था।

औरंगजेब ने शहर में घूमते हुए उस भव्य मंदिर को देखा। उसे जब यह मालूम हुआ कि यह बादशाहत के मान्य जौहरी नगर सेठ का है। उसके दादा की इजाजत से बना हुआ मंदिर है, जिसमें बुतपरस्ती होती है, तो मन ही मन बड़ा नाराज हुआ।

इधर सेठ शांतिदास को पता चल गया कि शाहजादा औरंगजेब बीबीपुरा में आया था। सेठ औरंगजेब के विचारों से परिचित थे। उन्होंने मूर्तियां तहखाने में रखवा दीं और दिखावा ज्यों का त्यों रखा।

औरंगजेब ने कुछ दिनों बाद कोतवाल को बुलाकर कहा—बीबीपुरा में काफिरों का जो मन्दिर है वह कैसे रहने दिया गया ?

कोतवाल सर झुकाकर बोला—'हुजूर, वह शहंशाह जहांगीरशाह की इजाजत से बना हुआ है और बनने पर खुद शहंशाह उसे देखने पहुँचे थे'।

औरंगजेब बोला—'हम वह कुछ नहीं जानते। मैं हुकम देता हूँ कि फौज लेकर उस मन्दिर का कब्जा करलो।'

कोतवाल ने कहा, 'हुजूर, शांतिदास सेठ ही नहीं, पर सारे महाजन बगावत कर सकते हैं। वे फौज का मुकाबला भी करेंगे।'

औरंगजेब गरजकर बोला, 'जो बगावत की हिमायत करे, उन्हें कोड़ों से पीटो, सिपहसालार को हुक्म देता हूँ। दो सौ सिपाही तुम्हारी मदद में दे, जाकर फौरन मन्दिर का कब्जा लो।'

सैनिकों ने मन्दिर को घेर लिया। रक्षकों को मन्दिर से बाहर निकाल दिया, 'जिन्होंने मुकाबला किया उन्हें बन्दी बना लिया गया।

सेठ शाँतिदास शहजादे की मुलाकात के लिए पहुँचे। मुलाकात की इजाजत मांगी, लेकिन जवाब मिला मुलाकात अभी नहीं हो सकती और जो कुछ हुआ वह तब्दील भी नहीं हो सकता।

सेठ ने कहलवाया कि मैं शहंशाह अकबर के जमाने से बादशाहत की खिदमत करता आया हूँ। मेरी वफादारी, पुराने ताल्लुकात और खानदानी का विचार कीजिए। अगर इस मन्दिर के बदले में मेरी सारी सम्पत्ति, घर-बार, जवाहरात सब कुछ ले लिया जाय तो भी मैं खुशी से दे सकता हूँ लेकिन मेरा मन्दिर मुझे वापिस लौटाया जाय। यही मेरी अर्ज है।

मोहरों के साथ अर्जी भेजी गई, लेकिन औरंगजेब ने कहा कि इसमें अब कुछ नहीं हो सकता। वह बड़ा ही दुराग्रही और असहिष्णु था।

अब तक जीवन में सेठ शांतिदास ने सदा सफलता और सुख ही देखा था, कभी आपत्ति, अपमान या दुःख नहीं देखा था, ऐसे सेठ शांतिदास के हृदय को इस घटना से बहुत बड़ी चोट लगी। वे बड़े दृढ़ और साहसी थे, लेकिन निराश होकर दुःखी हृदय से घर लौटे। मन्दिर की समस्या सुलझने तक आयंबिल करने का व्रत लिया।

उधर औरंगजेब मन्दिर में पहुँचा। उसने विशाल और भव्य मन्दिर देखकर कहा—'बुत-परस्तों ने बहुत बड़ा मन्दिर बनाया था।'

'हाँ हुजूर, इसके लिए नौ लाख मुद्रा खर्च हुई थी।' सेवक ने कहा।

औरंगजेब बोला, ऐसा है तब तो इसका बहुत बढ़िया इस्तेमाल मजहब के लिए होना चाहिए। और कहा कि दिवारों पर जो खुदाई की गई है, वह मिटाकर सपाट दीवारें बनाई जायें, इसे मस्जिद का रूप दे दिया जाय। फर्श पर नमाज पढ़ने की जगह बनाई जाय। मिस्त्री नुरुल्ला से कहा कि इसमें जो तब्दीली करना हो वह करके जल्दी ही मस्जिद बनादी जाय। कहां पानी के कुंड बनाना, कहाँ मेहराबें करना और कहाँ मीनारें बनाना, कहाँ शाही बैठक हो और कहां मुल्ला बाँग दे, सब बताकर ताकीद की कि रमजान तक यह सब तैयार हो जाय और उसकी इत्तला हमें दी जाय सो हम मौलवी फतहउल्ला को साथ लेकर खुद आकर यह मस्जिद खुदा के कदमों में पेश करेंगे।

मन्दिर की तोड़-फोड़ की खबरों से सारे शहर में तहलका मच गया। पूरे शहर में तीन रोज की हड़ताल रही। सेठ शांतिदास और उनके परिवार के लोगों ने अट्ठम तप किया।

किसी तरह प्रतिमाजी तो बचा ली गई पर मन्दिर बचाया नहीं जा सका। सेठ शांतिदास का पूरा परिवार शोकसागर में डूब गया था, पर सेठ शांतिदास के अन्तस् में सहज स्फूर्ति हुई, उनके मुख पर दृढ़ निश्चय दिखाई दिया। वे अपने बड़े भाई से बोले—भैय्या, मैं देहली जाकर कुछ बन सके वह करने की कोशिश करूंगा।

सेठ दिल्ली जाकर शाहजादा दाराशिकोह से मिले, जो अकबर की तरह उदार विचार का था और हिन्दू तथा जैन सन्तों से सम्पर्क रखता था। उपनिषदों का फारसी में तर्जुमा करवाया था। सब धर्मों के प्रति समभावी था। सहानुभूतिपूर्वक सेठ शांतिदास की बात

सुनी और बादशाह सलामत को समझाकर कोई रास्ता निकालने को कहा।

तीसरे रोज बादशाह के दरबार में सेठ शांतिदास को मुलाकात के लिए बुलाया गया। सेठ ने बहुमूल्य आभूषण बादशाह को नजर किए।

बादशाह ने पूछा—"कहिए जौहरी मामा सब ठीक है ?"

"खुदाबन्द, मेरी जिन्दगी बर्बाद हुई। मेरे सफेद बालों में मिट्टी डाल दी गई हुजूर, मैं हर तरह से सताया गया हूँ, सेठ ने कहा।"

बादशाह ने अनपत्व से पूछा—'कहो क्या बात हुई ?'

सेठ शांतिदास ने बड़ी कुशलता से मंदिर के ध्वंस की बात कही और बताया कि बादशाही फर्मान से वह मंदिर बना था। जगह का रुक्का मिला था, मैंने अब तक बादशाह की खिदमत की, अब तक बादशाह की मेहरबानी रही, लेकिन आपके खिदमतगार पर बड़ा जुल्म हुआ परवरदिगार !

शहजादा बोला—"आप कहते हो ? मंदिर फनाह हो गया। वहाँ मस्जिद बन गई। अब आप क्या चाहते हैं ?"

सेठ बोले, "हुजूर, मुझे मंदिर की जगह का कब्जा मिले, यही गुजारिश है।"

बादशाह ने कहा, "लेकिन वहाँ तो मस्जिद बन गई है। अब वहाँ मंदिर कैसे बन सकता है। यह बात शारीयत के खिलाफ है।"

सेठ बोले, "बादशाह सलामत की मेहरबानी से सब कुछ हो सकता है। मैं बादशाहत का पुराना खैरख्वाह खिदमतगार हूँ। आपसे इन्साफ चाहता हूँ। मुझे मेरी जगह वापिस मिले और गुनहगार को सजा। मैंने यह मंदिर शहंशाह बादशाह सलामत जहांगीर की इजाजत से बनाया था। मेहरबानी करके नक्शा देखिए। सब खुलासा हो जायगा।"

बादशाह ने नक्शा और कागजात देखकर कहा, "जौहरी मामा, मैं तुम्हारी पुरानी खिदमत और ताल्लुकात को जानता हूँ, तुमको मेरे बुजुर्गों ने इज्जत बख्शी थी, मैं भी तुम्हारी इज्जत करता हूँ। आप खुशी से जाइए, मैं अहमदाबाद फरमान भिजवाता हूँ। सब कुछ ठीक होगा।"

शांतिदास सेठ जब फिर शाहजादा दाराशिकोह से मिले तो उन्होंने बताया कि बादशाह सलामत ने औरंगजेब का दक्कन में तबादिला कर दिया है। गुजरात के सूबेदार की जगह मुझे तैनात किया है। लेकिन मैं दिल्ली छोड़कर बाहर जा नहीं सकता, इसलिए मेरी ओर से गैरतखान को मैं भिजवा रहा हूँ, वह मेरे भरोसे का और मेरे हुक्म की तामील करने वाला है। आपको फरमान मिल जायगा।"

जो फरमान ३ जुलाई १६४८ को लिखा गया वह निम्न-लिखित है—

'तोग्रा (सुनहरी स्याही में लिखा फरमान) अब्दुल मुजफ्फर, शाहबुद्दीन मोहम्मद साहब करान सानी शाहजादा बादशाह गाजी।

निशान आलीशान, शाहजादा बुदेल इकबाल, मोहमद दाराशिकोह।

मुद्रा—मुहम्मद दाराशिकोह इब्ज शाहजहान बादशाह गाजी।

सब सुबे, सूबेदार, अफसरों, मौजूदा और आने वालों को जाहिर किया जाता है कि, अह-मदाबाद के नगरसेठ शाँतिदास जौहरी के

मन्दिर के लिए शाहस्तखान उनद्-तुल-मुल्क गैरतखान को फरमान है कि—

"शाहजादा, सुलतान औरंगजेब बहादुर ने इस जगह कुछ महरावें बनाकर मस्जिद बनाई थीं, लेकिन मुल्ला अब्दुल हकीक ने हमारी हुजरात में आकर जाहिर किया कि दूसरे की मिल्कियत पर बिनाहक के मस्जिद बनाना बेकानूनी है। यह मिल्कियत सेठ शाँतिदास की है। सिर्फ नामदार शाहजादे मारफ़त बनाई गई मेहराबों की वजह से वह मस्जिद नहीं हो सकती, इसलिए हुक्म किया जाता है कि सेठ शाँतिदास को बिला वजह तकलीफ न दी जाय, ये मेहराबें वहां से निकालकर वह मिल्कियत सेठ शाँतिदास को सौंपी जाय।

हुक्म किया जाता है कि शाँतिदास जौहरी पर मेहर निगाह कर मिल्कियत सौंप दी जाय। वहाँ वे उसका इस्तेमाल अपने महजब के मुआफिक खुशी के साथ इबादत के लिए कर सकते हैं। जो फकीर वहां रहते हैं, उन्हें वहाँ से निकाल दिया जाय। उन्हें सेठ शाँतिदास के साथ झगड़ाफसाद न करने दिया जाय।

नामदार शहंशाह को यह भी पता चला है

कि कुछ बौहरे मन्दिर का सामान उठाकर अपने घर ले गए हैं। इस फरमान से ताकीद की जाती है कि उन बोहरों से सामान लेकर सेठ शाँतिदास को सौंपा जाय। जो सामान न मिले उसकी कीमत शाँतिदास को दी जाय। यह फरमान बहुत जरूरी होने से उसकी तामील तुरन्त की जाय। इस फरमान में कुछ भी फेरबदल न किया जाय और न ही हुक्म की नाफरमानी की जाय। हीजरी सन् १०५८ जुमा अल्वार शा की २१ तारीख को यह फरमान जारी किया है।

शाही फरमान से वह मिल्कियत सेठ शांतिदास को सौंपदी गई, लेकिन उसके पुनरुद्धार की समस्या बड़ी गंभीर बन गई। उसका उपयोग नहीं किया जा सकता, ऐसी कुछ लोगों ने दलील की। सेठ शांतिदास ने महान् साधु संघ को आमंत्रित कर उनके समक्ष बात रखी। लम्बे समय तक चर्चा चली। अन्त में निर्णय हुआ कि वहाँ फिर से मंदिर की प्रतिष्ठा नहीं की जा सकती। लेकिन शाही फरमान के कारण मुस्लिम भी उसका उपयोग नहीं कर सकते थे, और न जैन ही उसका उपयोग कर पाते जिससे लाखों के खर्च से बनाया हुआ विशाल मंदिर खंडहर बना। सेठ शांतिदास के प्रयत्नों को रूढ़िवादी समाज ने निरर्थक बना दिया।

यद्यपि जैन समाज की रूढ़िगत परम्परा के कारण वहाँ फिर से मन्दिर नहीं बन सका लेकिन इस प्रकार फरमान प्राप्त करना उनकी बहुत बड़ी विजय थी। समाज की अदूरदर्शिता ने शान्तिदास सेठ की विजय को पराजय बना दिया।

सेठ शान्तिदास ने जवाहरात के सिवा सराफी का कामकाज भी काफी बढ़ा लिया था। बादशाह के सराफ थे। बहुत बड़ी रकमें कर्ज के रूप में बादशाह शाहजहां को देते थे। बादशाह को जवाहरात का बहुत शौक था। उसने छः करोड़ खर्च करके मयूरासन नामक सिंहासन बनाया था। मोर के आकार के उस सिंहासन में मोरपंख में उत्तमोत्तम रत्न जड़े थे। वे रत्न एकत्र करने में शान्तिदास सेठ के परिश्रम का बहुत बड़ा हिस्सा था। इस कारण से बादशाह की सेठ शान्तिदास के प्रति कृपा दृष्टि थी। इसके अतिरिक्त कंदाहर के आक्रमण में बहुत खर्च होने से जब धन की जरूरत हुई तो वह कर्ज के रूप में सेठ शान्तिदास से लिया गया था। इसलिए सेठ शान्तिदास का बादशाह पर प्रभाव भी था।

सेठ शान्तिदास इस प्रभाव का उपयोग धर्म और तीर्थों के रक्षण में करते। वे जो धीर धार करते उसका उद्देश्य केवल ब्याज कमाना ही नहीं था, पर उसका लक्ष्य था मन्दिरों की रक्षा। बादशाह को कर्ज देते समय मन्दिर की रक्षा के लिए अभिवचन लेकर फर्मान निकलवाते।

१६२९-३० में निकाला हुआ फरमान आज भी सेठ आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी में मौजूद है। जिसमें लिखा है—

> 'नामदार' बादशाह को खबर दी गई है कि शत्रुंजय का पहाड़ और संखेश्वर तथा केशरियाजी के मन्दिर पुराने जमाने से मौजूद हैं। इसके सिवा तीन पौषधाशलाएँ खम्भात में, एक सूरत में और एक राधनपुर में सेठ शान्तीदास की देख-रेख और कब्जे में है। यह सब स्थान जैनियों

को दिये जाते हैं उसमें कोई भी दखलन्दाजी न करे।'

इस फरमान में जहाँगीर के फरमान से निर्मित अहमदाबाद के चिन्तामणि पार्श्वनाथ का भी उल्लेख है कि वहाँ भी कोई दखलन्दाजी न हो।

शान्तिदास सेठ अहमदाबाद के नगरसेठ, बादशाह के अमीर ही नहीं थे, पर श्वेताम्बर समाज के नेता थे। बहुत से तीर्थों तथा मन्दिरों की वे व्यवस्था और प्रबन्ध करते थे। जैन समाज के प्रतिनिधि के रूप में बादशाह से फरमान प्राप्त करते और उसके लिए सम्पत्ति और शक्ति का व्यय करते।

पालीताणा जैनों का बड़ा और महत्त्वपूर्ण तीर्थक्षेत्र था। मुस्लिमों के राज्य में उसकी सुरक्षा की जैन समाज को बड़ी चिन्ता रहती थी क्योंकि सौराष्ट्र में राणकपुर और मांडवी मुगलों की छावनियाँ थीं। धर्मान्ध मुल्लाओं के हस्तक्षेप की सम्भावना रहा करती थी। वे बड़े असहिष्णु तथा दुराग्रही होते थे। इसलिए शान्तिदास सेठ शहाजहाँ से समय और अवसर देखकर फरमान प्राप्त करते। शाहजहाँ अकबर और जहाँगीर के समान उदार और सहिष्णु नहीं था फिर भी शान्तिदास सेठ के प्रयत्नों से १६५६ में एक फरमान में पालिताणा गाँव इनाम के रूप में उन्हें देने की घोषणा की, जबकि १६५७ के फरमान में शत्रुंजय परगणा दो लाख में शान्तिदास सेठ को वंश-परम्परा देने की बात लिखी है और इस फरमान को कायमी वंशपरम्परा का मान कर नई सनद न माँगने तथा किसी प्रकार कर न लगाने की बात थी।

शान्तिदास सेठ अपनी उत्तरावस्था में अपना कारोबार पुत्रों को सौंपकर निवृत्त जीवन में धार्मिक कार्यों में ही अपना समय लगाते।

उन्होंने व्यावहारिक काम देखना बन्द कर दिया था। पुत्रों-पौत्रों वाले विशाल और समृद्ध परिवार में अपना जीवन धार्मिक कार्यों में बिताते थे। उनका निधन ७० साल की आयु में सन् १६५९ में हुआ।

2

नगर सेठ लक्ष्मीचन्द

सेठ शांतिदास जौहरी ने १६५७ में व्यवसाय से निवृत्ति लेकर अपना समय आत्म-साधना में लगाया और परिवार का सारा दायित्व उन्होंने पुत्र लक्ष्मीचन्द को सौंपा। जब कभी कठिन समस्या में सलाह और सहयोग मांगते, देते।

सेठ लक्ष्मीचन्द भी उनके मार्ग-दर्शन में काम सम्भालते हुए व्यवहार कुशल हो गये थे और राजनीति भी समझने लग गये थे। जब १६५७ में शाहजहाँ बहुत बीमार हुए तब उनके चारों पुत्रों में से सबसे बड़ा दाराशिकोह दिल्ली में था। दूसरा सुजा अब्दुल्ला बंगाल का सूबेदार था, तीसरा औरंगजेब दक्षिण का और चौथा मुराद गुजरात का सूबेदार था। बादशाह की बीमारी और दाराशिकोह के उदार और कोमलवृत्ति का लाभ उठाकर तीनों कुमारों ने सत्ता हथियाने के लिए तैयारी की। मुरादवख्स ने भी अहमदाबाद में अपने आप को बादशाह घोषित कर मस्जिद में अपने नाम से खुतबा पढ़ाई। शाहजहान के चारों लड़के संघर्षरत हुए। सैनिक तैयारियाँ होने लगीं। सेना एकत्र करने लगे। मुरादवख्स को धन की आवश्यकता थी वह सेठ लक्ष्मीचन्द ने देकर उससे शत्रुंजय तीर्थ के लिए नई सनद प्राप्त की। उसने अपने आप को बादशाह गाजी के नाम से घोषित किया। इस फरमान में लिखा गया कि तहसील पालीताना जो शत्रुंजय के नाम से भी पहचाना जाता है। उसे बादशाही फरमानों द्वारा शांतिदास सेठ को इनाम में बख्शा गया है। उन

फरमानों के बावजूद सेठ शांतिदास जौहरी की ओर से नई सनद की माँग की इसलिए फरमान किया जा रहा है कि परगने को शांतिदास जवेरी का इनामी परगना समझा जाय। जो २८ जून १६५८ में निकाला गया।

यह फरमान इसलिए लिया गया कि नये बादशाह का संरक्षण प्राप्त हो। औरंगजेब ने कुरान की सौगन्ध लेकर मुराद से कहा कि वह राज्य नहीं चाहता। मक्का जाकर खुदा की इबादत में अपना समय बिताना चाहता है। उसकी बातों में मुराद आकर औरंगजेब के पक्ष में मिला और औरंगजेब तथा मुराद की सेना के सामने सामगढ़ के पास दाराशिकोह की पराजय हुई। दाराशिकोह को पलायन करना पड़ा। दोनों की संयुक्त सेना ने उसका पीछा किया। इधर मुराद के साथियों द्वारा उसे मद्यपान और ऐशो-आराम में ऐसा मस्त किया कि वह अपनी सुध-बुध खो दे। मुराद जीत की खुशी में बहुत अधिक मद्यपान करने लगा। उसे अपने आपका भान ही नहीं रहा। तब औरंगजेब ने सेना के बड़े-बड़े अफसरों और सेनापतियों को उसकी स्थिति बताकर कहा कि यह तो बादशाहत के लिए अयोग्य शासक है। सरदारों और सेनापतियों में यह भाव निर्माण कर उन्हें बहुत बड़ी रिश्वतें देकर अपने पक्ष में लिया और मुराद को कैद कर लिया। उसे ही नहीं, अपने पिता शाहजहां को भी आगरा में कैद कर १७ जुलाई १६५८ में बादशाह बना। बहुत बड़ी धूमधाम और उत्सव के साथ गद्दीनशीन हुआ।

मुरादबक्स को लक्ष्मीचन्द ने आक्रमण पर जाते समय साढ़े पाँच लाख रुपये कर्ज दिये थे। मुराद ने गुजरात के शहंशाह का पद घोषित कर उज्जैन को अधीन करके वहीं से साढ़े पाँच लाख रुपये किस प्रकार चुकाये जायं इस विषय में सूबेदार को रुक्का भेजा था जिसमें लिखा था—सूरत की आमदनी से डेढ़ लाख, खम्भात की

आमदनी से एक लाख, भरुच की आमदनी से पचास हजार, वीरमगाँव से पैंतालीस हजार और नमक की आय से तीस हजार और शेष अन्य आमदनी से यों साढ़े पाँच लाख रुपयों की पूर्ति करने को लिखा था।

किन्तु यह परिस्थिति बदल गई। मुराद को मथुरा में कैद किया गया यह मालूम होने पर लक्ष्मीचन्द तथा उनके भाइयों ने सेठ शांतिदास के समक्ष समस्या रखकर सलाह मांगी कि क्या किया जाय ?

सेठ शांतिदास, जो मुगलों की राजनीति और औरंगजेब के स्वभाव से परिचित और अनुभवी थे, उन्होंने पुत्रों से कहा—'ऋण देना अपना व्यवसाय ही है। फिर तुम लोगों ने मुराद को ऋण देने में तीर्थों की रक्षा के लिए फरमान प्राप्त किये थे। सो तो ठीक ही था पर अब तो वह कैद में है। जहाँ तक औरंगजेब के स्वभाव को जानता हूँ वह दीर्घद्वेषी और दुष्ट है। मुराद को वह कैद से मुक्त करे यह सम्भव नहीं लगता। वह इस बात को भली-भाँति जानता है कि हमने मुराद को सहायता की है और वह हमें उसके पक्ष का माने यह भी स्वाभाविक है। इसलिए अपना धर्म और सम्पत्ति दोनों के लिए यह महान् संकट है। औरंगजेब अत्यन्त असहिष्णु, अन्य धर्मों के प्रति द्वेष रखने वाला और उन्हें हानि पहुँचाने वाला है। इसलिए हमारे लिए बड़ी कसौटी का समय है।

'पिताजी, आपका कथन योग्य है। औरंगजेब आप कहते वैसा ही है। जो कुछ हुआ उसमें क्या मार्ग निकालें कि जिससे उसको नाराजी न होकर अपने तीर्थों और सम्पत्ति दोनों की ही रक्षा हो। आप अनुभवी हैं इसलिए आप से मार्ग-दर्शन लेने आये हैं।' पुत्रों ने कहा।

सेठ शांतिदास बोले—'मुझे अपनी सम्पत्ति से मन्दिरों और तीर्थों की चिन्ता अधिक है। अपना मुराद को दिया हुआ कर्ज मिले या न मिले पर मन्दिरों को कैसे बचाया जाय यही समस्या सबसे बड़ी है।

क्योंकि वह मन्दिरों का शत्रु है। वह कब क्या करेगा कहा नहीं जा सकता।'

'तो पिताजी, किसी को उसके पास भेजकर या किसी के द्वारा उसे खुश करने का प्रयत्न किया जाय तो कैसा रहेगा।' लक्ष्मीचन्द बोले।

'मैं उसमें कुछ भी लाभ नहीं देखता। बीच का दलाल ही जो कुछ हम देंगे वह हजम कर जावेगा और काम नहीं होगा, फिर औरंगजेब किसी को मित्र नहीं समझता और उसे प्रभावित कर सके ऐसा कोई दिखाई नहीं देता। वह किसी पर विश्वास नहीं करता।' सेठ शांतिदास बोले।

लक्ष्मीचन्द बोले—'क्या किसी बेगम का वसीला नहीं लगाया जा सकता। हम लोग सभी बेगमों से परिचित हैं। कुछ जेवर भेंट में देने से वे हमारा काम कर सकती हैं।'

शांतिदास ने उत्तर दिया, 'मुझे नहीं लगता कि वह बेगमों की बात माने, वह बेगमों को खिलौना समझता है। वह अत्यन्त स्वार्थी है, बेगमों की बात माने ऐसा वह नहीं है।

शांतिदास के सबसे छोटे पुत्र माणकचन्द ने कहा, पिताजी उसका पुत्र सुलतान आजम मेरा मित्र है। उसकी मुझ पर बड़ी मेहरबानी है। और औरंगजेब को भी वह प्रिय है। क्या उसका उपयोग किया जा सकता है?

शांतिदास सेठ बोले—औरंगजेब न बेगमों की बात सुनेगा और न बेटों की। उस पर किसी का प्रभाव पड़े ऐसा वह नहीं है। बल्कि लगता है कि ऐसे प्रयत्नों से काम उल्टा बिगड़ने की सम्भावना है।

बेटे बोले—तब क्या किया जाय?

शांतिदास सेठ ने गम्भीर चिंतन कर कहा—यह काम मुझे ही

औरंगजेब से मिलकर करना चाहिए। मैं स्वयं जाकर उससे मिलूंगा।

लक्ष्मीचन्द बोले—आप और इस उम्र में, ऐसे व्यक्ति से मिलें जिसने अपने मन्दिर का नाश किया था और जब आप मिलने गए तो आपका निवेदन तक नहीं सुना। हम आपको उस जालिम के पास जाने नहीं देंगे। न मालूम वह क्या करे!

शांतिदास बोले—बेटा, तुम ठीक कहते हो, लेकिन औरंगजेब से मेरा मिलना ही ठीक रहेगा। उसकी जीत हो रही है, वह खुशी में जरूर है, लेकिन यह भी जानता है कि यदि उसे स्थिर रहना है तो विपक्षियों को अपनी ओर मिलाना उचित रहेगा और उसे इस समय धन की अत्यधिक आवश्यकता है। इसलिए उसे जाकर मिलना और अवसर देखकर बात करना ही उचित होगा। कम से कम मेरे मिलने से आज जो परिस्थिति है उससे अधिक नहीं बिगड़ेगी। प्रयत्न करना अपना काम है, किन्तु मुझे लगता है कि किया हुआ प्रयत्न निरर्थक नहीं होगा।

और सेठ शान्तिदास ने अपनी वृद्धावस्था में भी कठोर प्रवास का श्रम उठाकर दिल्ली में शहंशाह औरंगजेब से मिलने का कार्यक्रम बनाया।

जब सेठ शान्तिदास दिल्ली पहुँचे, तो औरंगजेब विजय की खुशी में था। दरबार में पहुँचकर सेठ शान्तिदास ने अभिवादन किया।

क्यों शान्तिदास जौहरी आप मजे में हैं। अब आप बहुत बूढ़े हो गये हैं? औरंगजेब बोला।

सेठ शान्तिदास ने कहा—हां, जहाँपनाह, बुढ़ापा तो आ ही गया है। लेकिन बादशाह सलामत की फतह की खबरें सुनकर खिदमत में सलाम करने आना जरूरी समझकर खिदमत में हाजिर हुआ हूँ।

औरंगजेब बोला– आप तो बादशाह के पुराने वफादार जौहरी और खिदमतगार हैं, आपकी खिदमत हमारी नजर में है।

शान्तिदास बोले—हुजूर, आपके पड़दादा शहंशाह अकबर और दादा बादशाह जहाँगीर के जमाने से हमारे खानदान पर रहम नजर रही है। हम बादशाहत के जौहरी और अमीर हैं, जिसके लिए हमारा खानदान बादशाहत का शुक्रगुजार है।

औरंगजेब बोला—आपका कहना ठीक है। आप लोगों का मुगल शहंशाहत के साथ ५० साल का पुराना रिश्ता है। अमीरात का दर्जा भी हमारे खयाल में है और हम शाही खानदान के जौहरी और अमीरात को कायम रखने के लिए फरमान निकालना चाहते हैं।

सेठ शान्तिदास बोले—हुजूर की महरबानी के लिये अहसानमन्द हूँ। बादशाह हुजूर की और तरक्की हो यही चाह है। हुजूर के कदमों में नजराना पेश करना चाहता हूँ।

औरंगजेब को उस वक्त धन की बहुत जरूरत थी इसलिए वह नजराने की बड़ी रकम देखकर अन्दरूनी बहुत खुश हुआ पर बाहरी दिखावे के लिए बोला, जौहरी मामा, आपका तो शहंशाह के साथ पुराने ताल्लुकात हैं। उसके लिए नजराने की क्या जरूरत थी ?

शान्तिदास सेठ बोले—जहांपनाह, हमारे बादशाहत के साथ ताल्लुकात सिर्फ जौहरी या अमीरात के ही नहीं पर लेन-देन के भी रहे हैं। जब-जब बादशाहत को धन की जरूरत पड़ी हम उसकी यथासम्भव पूर्ति करते रहे। इस समय भी जो कुछ बन पड़े वह करना हमारा फर्ज ही है। यह बात सही है कि इस वक्त हमारी काफी बड़ी रकमें दूसरी ओर लगी हुई हैं, कुछ तो फँस भी गई हैं। फिर भी हम आपकी फतह में कुछ साथ दे सकें और कुछ न कुछ करने की ख्वाइश रखकर यह छोटी-सी रकम कदमों में पेश करता

हूँ, जिसे मंजूर रखने की मेहरबानी करें। यों कहकर थैली बादशाह को भेंट की।

औरंगजेब खुश होकर बोला, आपकी वफादारी और ताल्लुकात को देखते हुये आपने जो कुछ किया उसके लिए हम इज्जत करते हैं और आप तथा आपके खानदान के लिए हमारी हमेशा मेहर-नजर रहेगी।

हुजूर की और बादशाहत की हमारे खानदान पर हमेशा मेहर नजर रही है। जिसके लिये हमारा खानदान बादशाहत के लिये हमेशा शुक्रगुजार रहेगा। एक गुजारिश है, हम लोगों के बन्दगी की जगह और तीर्थों को अब तक जिस तरह बादशाहत से रक्षा होती रही वह आगे भी होती रहे। बादशाहत से हमेशा शाही फरमान मिलते रहे, हुजूर की ओर से भी मिलेंगे यह भरोसा है।

औरंगजेब अपनी सत्ता दृढ़ बनाने के लिए अपने समर्थकों की संख्या बढ़ाने में महत्व समझता था। वह धूर्त तथा पक्का राजनीतिज्ञ था। उसे शान्तिदास सेठ और जैन कौम को राजी रखना था। शान्तिदास सेठ की अपने परिवार के स्वार्थ की नहीं पर अपने मजहब की रक्षा की चिन्ता देखी तो उसका कठोर दिल भी कुछ नरम हुआ। वह बोला, खुदा के दरबार में हर इंसान को पहुँचने का हक है। इसलिए आप फिक्र न करें। आपको अपने खानदान की सनदें नये फरमान से ताईद की हुई मिल जावेंगी। आप जैसे शाही खानदान वफादार अमीर और बादशाहत के मददगार साहूकार के लिये हमारे दिल में इज्जत है। आपके खानदान को अहमदाबाद के सेठ का इल्काब और शाही जौहरी की जगह बख्शी जायगी लेकिन आपकी रकमें जो अटक गई हैं वे वसूल नहीं होती हों तो उसमें भी हमारी मदद ली जा सकती है।

सेठ शान्तिदास बोले—हुजूर, आपने हमारे तीर्थों के लिए नये फरमान निकालने की महरबानी की मन्शा जाहिर की उसके लिये

हमारा खानदान ही नहीं लेकिन जैन कौम उसके लिए आपकी अहसानमन्द रहेगी। आपने हमारी रकमें जो वसूल नहीं हो रही हैं उनके वसूल कराने में जो दिलचस्पी बताई उसके लिए मैं आपका शुक्रगुजार हूँ। हमारा लेन-देन व्यापारियों के साथ तो होता ही है लेकिन शेहंशाहत की तरफ भी हमारा कुछ लेना है। मुरादबख्श ने हमसे साढ़े पाँच लाख रुपये कर्ज लिया था।

अपने दुश्मन मुराद बख्श का नाम सुनते ही औरंगजेब के तेवर बदले। वह क्रुद्ध होकर बोला—मुरादबख्श ने लिये कर्ज के साथ बादशाहत का क्या सम्बन्ध है?

शान्तिलाल सेठ ने कहा—हुजूर, वे जब गुजरात के सुबा थे। उस वक्त यह रकम हमने उन्हें कर्ज दी थी। जो दस्तावेज बने उस पर शाही सिक्का लगा हुआ है। हमने कर्ज मुरादवख्श को नहीं पर बादशाहत को दिया था। मेरी दरखाश्त है कि आप हमारी हालत पर गौर करें। आपके दिल में हमारे खानदान के लिए रहम है इसलिए मैं अहसानमन्द हूँ। लेकिन हमारी इज्जत आपके हाथ में है।

औरंगजेब ने कहा—आप अपनी दरखास्त पेश करें। हम उस पर गौर करेंगे।

सेठ शान्तिदास ने झुककर कुर्निसात की और वे वापिस लौटे। उसकी यात्रा सफल रही। औरंगजेब ने १० अगस्त १६५८ में निम्नलिखित फरमान अहमदाबाद के सूबेदार के लिए भेजा—

"शाह मुहम्मद औरंगजेब गाजी का हुक्म है कि हमारी मेहरबानी की चाह रखने वाले रहिमत खान को फर्माइश है कि अमीरों में जिनका दर्जा ऊँचा है ऐसे शान्तिदास जौहरी को बादशाह

सलामत की मुलाकात की इज्जत बख्शी गई थी। उन्हें दरबार में से अहमदाबाद जाने की इजाजत महरबान बादशाह ने बख्शी है और उन्होंने जाहिर किया कि शाहजादा मुरादबख्श को चार लाख रुपये उनके लड़के लक्ष्मीचन्द से, ६२ हजार उनके भागीदार रखीदास और ८० हजार उनके सगे-सम्बन्धियों से लिये जिससे शाँतिदास को बहुत फिक्र हुई थी।

हमारी उदारता और रहम के झरने के पानी को पीने वाले शाँतिदास को एक लाख रुपये शाही खजाने से देने का हुक्म करते हैं और ४,४२०० के दस्तएवज देखकर एक लाख सुबा शाह नवाजखान की इजाजत से फौरन दे दिये जाँय, जिससे इनके रोजगार चलाने में तकलीफ न हो।

दूसरा फरमान ३० जनवरी १६६० में खुदा के बन्दे और पाक अबूब मुजाफिर मुहम्मद औरंगजेब बादशाह के सही सिक्के से निकला—

हमारे मौजूद और आगे हुकूमत पर आने वालों से बादशाह सलामत की फरमाइश है कि सेठ शान्तीदास ने प्रकट किया उनकी बहुत बढ़ी रकमें प्रान्त (सूबे) के अधिकारियों तथा लोगों को कर्ज दी गई हैं। उसकी वसूली नहीं होती,

झूठे बहाने बनाये जाते हैं उनकी वसूली में उन्होंने शाही सरकार से अर्ज की है।

जिससे इस फरमान के मार्फत फर्माइश की जाती है कि जो सारी दुनिया में शाही हुकूमत सबसे बड़ी है और जिसे दुनिया मानती है, वह हुकूमत जाँच कर उन्हें कर्ज वसूली में मदद करे। कोई भी झूठे बहाने से कर्ज रोक कर न रखे।'

औरंगजेब जैसे झनुनी और दूसरे धर्मों के प्रति असहिष्णु व्यक्ति ने जैन तीर्थों की रक्षा के लिए जो फरमान निकाला वह बड़ा ही आश्चर्यजनक और महत्वपूर्ण था, जिसमें लिखा था कि—

'सहस्रकिरण' के पुत्र श्री शाँतिदास जौहरी जो जैन है, उसने बादशाह से खास मेहरबानी की अर्ज की है। जिससे पालिताणा (जो अहमदाबाद सूबे के आधीन है) गाँव, उसमें बसे हुए मन्दिर जो शत्रुंजय के नाम से पहचाने जाते हैं। शाँतिदास जौहरी ने बादशाही फौज की कूच के वक्त राशन और खुराक पहुँचाकर बादशाहत की बहुत बड़ी खिदमत की है। उसके बदले में शाही महरबानी चाहते हैं। जिसे हम शाँतिदास जौहरी को सौंप देते हैं। वहाँ पहाड़ पर जो घास पैदा होगी उसमें उसकी कौम के लोगों के जानवर

चरें। पहाड़ की लकड़ी और पैदा होने वाली चीजों का इस्तेमाल ये श्रावक लोग करें। इस फरमान की हुक्म उदली या फेरबदली आगे भी न की जाय।

इसके सिवा जूनागढ़ के गिरिनार और सिरोही जिले के आबु पहाड़ भी हम शाँतिदास जौहरी को सौंपते हैं। इस फरमान के मार्फत हम हुक्म देते हैं कि उसके दस्तावेज कर दिये जायँ। उस पर कोई भी राजा फरियाद करे तो उसकी सुनवाई न हो और न हर साल नई सनद माँगी जाय।

जो कोई इस मामले में हुक्मउदूली करेगा वह अल्लाह का गुनहगार होगा। इसके लिए अलग से सनद बख्शी जाती है।

सेठ शांतिदास ने यह फरमान अपनी आखरी मुलाकात में निकलवाने की तजवीज की थी पर जब यह फरमान आया तो वे संसार छोड़ स्वर्ग में जा बसे थे। अपने किये महत्त्वपूर्ण कार्य का फल देखने उपस्थित नहीं थे।

सेठ लक्ष्मीचन्द ने अपनी पिता की परम्परा अक्षुण्ण रखी और औरंगजेब जैसे स्वार्थी, धर्मान्ध क्रूर बादशाह पर अपना प्रभाव बनाये रखा। औरंगजेब के विषय में कहा जाता है कि वह अत्यन्त स्वार्थी था और किसी के साथ निजी सम्बन्ध नहीं रखता था पर अहमदाबाद के सेठ परिवार के साथ जो सम्बन्ध चार पीढ़ियों से चले आ रहे थे

वे चालू रखे। इसका श्रेय सेठ लक्ष्मीचन्द की व्यवहार कुशलता को देना चाहिए। औरंगजेब ने सेठ लक्ष्मीचन्द को अहमदाबाद के नगर सेठ की पदवी के लिए नया फरमान निकाला। सेठ लक्ष्मीचन्द उसे बहुत बड़ी रकमें कर्ज रूप में देते और देहली जाकर समय-समय पर मिलते रहते। उनका उत्कर्ष पिता की तरह उच्च स्थिति में था।

औरंगजेब के समय से ही मुगल साम्राज्य का पतन होने लगा था। राजपूत, सिख, और मराठे उसके खिलाफ संघर्ष रत थे। अपने अन्तिम पच्चीस साल औरंगजेब ने दक्षिण में मराठों को पराजित करने में लगा दिये थे। मराठों की राजनीति ऐसी थी कि एक बार एक जगह हार हो जाने पर वे दूसरी जगह लड़ने को तैयार हो जाते। इसलिए औरंगजेब अन्त तक उन्हें पराजित करने में असफल रहा। उसका साम्राज्य कमजोर हो गया।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों—मुअज्जम, अजीम और करीमबख्श में राज्यसत्ता के लिए झगड़े शुरू हो गये। उस समय मुअज्जम काबुल और लाहौर का सूबेदार था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसने अपने आपको बहादुरशाह नाम से बादशाह घोषित किया। औरंगजेब के दूसरे पुत्र आजिम ने भी अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया। इस कारण दोनों भाइयों में चम्बल के पास घनघोर युद्ध हुआ जिसमें आजम पराजित हुआ और मारा गया। करीमबख्श दक्षिण में था। उसने भी बादशाह के रूप में अपना अभिषेक करवाया। लेकिन बहादुरशाह ने उसको भी पराजित कर दिया। हैदराबाद के भयानक युद्ध में करीमबख्श काम आया।

सेठ लक्ष्मीचन्द बहादुरशाह से लाहौर में मिले। काफी कर्ज दिया और फौज के लिए राशन की भी पूर्ति की थी। लक्ष्मीचन्द पर बहादुरशाह की कृपादृष्टि थी और जवाहरात आदि की खरीद उन्हीं के द्वारा होती। सेठ समय-समय पर कर्ज देते ही रहते।

बहादुरशाह स्वयं विद्वान, उदार, समझदार था और धार्मिक मामले में समभाव रखता था। इससे वह लोकप्रिय भी हुआ। बहादुरशाह ने लक्ष्मीचन्द को पालीताणा आदि तीर्थों के संरक्षण और नगरसेठ के अधिकार की सनद भी दी। सेठ लक्ष्मीचन्द का सन्मान भी उसने बहुत किया। उन्हें प्रथम श्रेणी का अमीर घोषित किया और पालखी, छत्री-मशाल का सन्मान दिया। लक्ष्मीचन्द सेठ ने शांतिदास सेठ से भी अधिक सन्मान प्राप्त किया। उनकी हवेली में पांच सौ सैनिक तैनात रहते थे। राजशाही वैभव भोगा।

बहादुरशाह की सल्तनत सिर्फ पांच साल तक रही। सन् १७०७ से १७१२ तक। उसकी मृत्यु के बाद उसके चारों पुत्रों में सत्ता के लिए युद्ध हुए। इनमें जहाँदरशाह सबसे बड़ा और शूर था। सेठ लक्ष्मीचन्द ने उसका पक्ष लिया। बहुत बड़े संघर्ष के बाद जहाँदरशाह गद्दीनशीन हुआ। अब सेठ लक्ष्मीचन्द का सन्मान और भी बढ़ गया। लेकिन राजगद्दी पर आने पर जहाँदरशाह ऐशोआराम और व्यसनों में डूब गया। उसे अफीम और मद्य का व्यसन लग गया। नशे में चाहे जैसी आज्ञाएं जारी करता और एक उपपत्नी के कहे अनुसार राज-काज चलाता। लक्ष्मीचन्द सेठ ने उससे सम्बन्ध बिच्छेद कर लिया था।

जहाँदरशाह के राज्य में अंधाधुंदी बहुत बढ़ गई उसका छोटा भाई अजीमशाह उसके हाथों मारा गया। अत: उसके लड़के फर्रुखशायर को बदला लेने के लिए उसकी राजपूत माता ने उकसाया। उसने विद्रोह किया। उस समय दिल्ली में सय्यदबन्धु हुसेनअलीखाँ और अब्दुल्लाखाँ बड़े प्रभावशाली थे। उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। सय्यदबन्धुओं ने सेठ लक्ष्मीचन्द से आर्थिक सहायता की मांग की। सेठ लक्ष्मीचन्द ने समय की स्थिति पहचान कर सहायता की। सेना

के लिए वाहन व राशन की मदद की। फर्रुखशायर ने बादशाह जहाँदरशाह को पराजित कर मौत के घाट उतार दिया। सेठ लक्ष्मीचन्द ने व्यवहार से निवृत्ति लेकर अपने पुत्र खुशालचन्द को कारोबार सौंपकर आत्मकल्याण में शेष जीवन बिताया।

3

सेठ खुशालचन्द

सेठ लक्ष्मीचन्द के बाद खुशालचन्द नगर सेठ बने। उन्होंने अपने पूर्वजों के वैभव में वृद्धि ही की। उनकी धार्मिक भावना और देव-गुरु के प्रति भक्ति अद्भुत थी। उन्होंने शत्रुंजय के लिए संघ निकाला था। वे समय-समय पर दिल्ली जाते और बादशाह फर्रुखशायर से मिलते रहते वह सेठ का बहुत सन्मान करता था। खुशालचन्द सेठ सैन्य भी रखते थे और अहमदाबाद के जैन समाज और व्यापारियों तथा तीर्थों के संरक्षक तो थे ही।

सूबेदार के सैनिक ने आकर कहा—'सेठ साहब, आज महावीर स्वामी के मंदिर का महोत्सव है आप जुलूस निकालना चाहते हैं। उसका परवाना लेने के लिए सूबेदार साहब ने कहलवाया है।'

सेठ ने उत्तर दिया—'इसकी इजाजत या परवाने की जरूरत नहीं है।'

सिपाही आश्चर्य से बोले—'बादशाह सलामत के प्रतिनिधि सूबेदार साहब के परवाने की आपको जरूरत नहीं है ?'

सेठ दृढ़ता पूर्वक बोले, 'हाँ, उसकी बिलकुल जरूरत नहीं है।'

सिपाही बोला—'मैं सूबेदार साहब के सामने यह बात पेश करता हूँ। लेकिन हाथी, घोड़े, रथों की सवारी सूबेदार साहब की इजाजत के बिना निकल नहीं सकती, ऐसा नामदार सूबेदार साहब ने फर्माया है।'

सेठ बोले—'ठीक है, लेकिन सूबेदार साहब से कहो कि खुशाल-शाह इस तरह की इजाजत लेने की जरूरत नहीं समझते।'

सिपाही बोला—'आपकी बात, हम कह देंगे, लेकिन ऐसी इजाजत लेने में हर्ज क्या है। सूबेदार साहब इसके लिए कोई नजराना या कर नहीं लेना चाहते, सिर्फ आप इजाजत मात्र ले लें इतना ही चाहते हैं।'

सेठ बोले, 'तुम्हारा कहना ठीक हो सकता है, लेकिन हम कोई नया रिवाज शुरू नहीं करना चाहते। चाहे वे आज नजराना या कर न मांगें, पर एक बार रिवाज शुरू होने पर आगे नहीं माँगेंगे यह कौन कह सकता है। भगवान की भक्ति में हम कोई नई बात दाखिल नहीं करने देना चाहते हैं।

सिपाही बोले—'आखिर, सूबेदार की इज्जत तो करनी चाहिए।'

सेठ बोले—'हम बाजिव बात हमेशा सुनते आये हैं और आगे भी सुनेंगे, लेकिन गैर बाजिव हुक्म हम नहीं मान सकते।'

सिपाही तेजी के साथ बोले—'सेठ साहब, आप नाहक क्यों झगड़ा मोल लेते हैं। आप तो व्यापारी हैं, सूबेदार से इस प्रकार झगड़ा मोल लेने में नुकसान ही है। नाहक क्यों मुसीबत में पड़ते हैं।'

सेठ बोले—जरूरत पड़ने पर मुसीबत भी सहन करने की ताकत रखते हैं। आप लोग फिक्र न करें। हम व्यापारी जरूर हैं, पर हमने हाथों में चूड़ियां नहीं पहन रखी हैं।'

सिपाही बोला—'इसका नतीजा बुरा भी आ सकता है।'

सेठ बोले—'नतीजा चाहे जो आवे, हमें अपने ऊपर भरोसा है।'

सूबेदार अपने लोगों से सारी चर्चा सुनकर बहुत क्षुब्ध हुआ। उसने सेठ को बुलाने के लिए आदमी भेजा।

संदेशवाहक जाकर सेठ से बोला—'आपको सूबेदार साहब ने बुलाया है।'

सेठ बोले—'मैं जरूरी काम में व्यस्त हूँ, आ नहीं सकता।'

संदेशवाहक बोला—'तब आप कब आ सकेंगे। बादशाही हुक्म का क्या यही जवाब है?'

सेठ बोले—'बादशाही फरमान को हमेशा मानता आया हूँ। लेकिन सूबेदार के मनचाहे फरमान को मैं नहीं मान सकता। सूबेदार से कह दें कि नगरसेठ खुशालशाह आने के लिए ना कहते हैं।

सूबेदार अखत्यार खाँ नया ही आया था। बादशाह का सम्बन्धी भी था। नौजवान और मगरूर था, उसे हुक्म चलाने की आदत थी। बादशाह का सम्बन्ध और सत्ता का नशा था। एक बनिया उसके हुक्म को न माने यह उसे बरदाश्त हो नहीं सकता था। वह गुस्से से खड़ा हो गया और फरमान भेजा कि दस हजार मुद्रा का सेठ से हुक्म को न मानने का दंड वसूल किया जाय। पचास घुड़सवारों को दंड वसूली के लिए हवेली पर भेजा। उन्हें हुक्म था कि यदि खुशी से दंड न दे तो जबर्दस्ती वसूल किया जाय। वैसा परवाना भी लिख दिया।

अधिकारियों ने उसको समझाया कि इस बात को इतनी न बढ़ाकर सुलह का रास्ता निकाला जाय। लेकिन सूबेदार घमण्ड में था, कहा—'जाओ मेरा हुक्म है, वैसा करो और उस बनिये को कैद कर मेरे सामने हाजिर करो।'

कोतवाल दिलावरखान पचास घुड़सवारों के साथ जवेरीवाड में पहुँचा। पोल में प्रवेश कर ही रहा था कि आवाज कानों पर आई—'खबरदार, बिना इजाजत के पोल के अन्दर नहीं आ सकते।'

सैनिक बोले—'हम शाही पायगाके सवार हैं।'

'आप जो हों, अन्दर नहीं आ सकते। पचास बन्दूकें सामना करने के लिए तैयार थीं।'

'तुम कौन हो? और आगे बढ़ने के लिए किसकी इजाजत चाहिए।' दिलावरखान ने आगे बढ़कर पूछा।

उत्तर मिला—'हम अरब हैं। इस पोल में आने के लिए नगरसेठ की इजाजत चाहिए।'

दिलावरखान बोला—'बादशाही फौज को रोकने का अन्जाम क्या होगा जानते हो?'

अरब बोले—'हम यह सब कुछ नहीं जानते। हमने मालिक का नमक खाया है। मालिक के लिए जान की बाजी लगाकर लड़ेंगे।

दिलावरखान बोला—'तुम जानते हो, इसका अंजाम क्या होगा? एक-एक को पकड़कर शाही फरमान की उदूली के ऐवज में खौफनाक सजा दी जावेगी। तुमको इस मुल्क में रहना हो तो शाही हुक्म के आगे सर झुकाना होगा। नहीं तो जान-माल से तबाह हो जाओगे। शाही फौज को रास्ता दो।'

अरब बोले—'हमारी बन्दूकें तैयार हैं। हमारे पास गोला-बारूद भी काफी है। मुकाबले के लिए हम तैयार हैं। इसलिए धमकी न देते हुए आप लोग चले जायं।'

दिलावरखान ने चारों ओर अरबों का जमघट देखा, लड़ने में खून खराबी होने पर भी पोल में जा सकने की सम्भावना नहीं दिखाई दी। वह अरबों की बफादारी से परिचित था। वे जान दे देंगे, पर अन्दर जाने नहीं देंगे। क्या किया जाय? उलझन में पड़ा। वापिस जाने पर सूबेदार उसे नामर्द कहकर उसकी बेइज्जती करेगा, नौकरी से खारिज कर देगा। और आगे बढ़ते हैं तो अरबों का मुकाबला करना होगा। उसकी स्थिति विषम बन गई।

उसने जवेरीवाड के आगे सरदारों को खड़ा रखकर सूबेदार से और फौज भेजने के लिए कहा।

सैनिक ने सूबेदार को खबर दी कि जवेरीवाड में सेठ की अरब फौज लड़ने के लिए खड़ी है। वहाँ दाखिल होने पर बड़ा तूफान खड़ा हो सकता है।

सूबेदार बोला—'कोई पर्वाह नहीं। समशेर और बन्दूकों के साथ हमला कर दो। फौज को हमले का हुक्म दो। फौज क्यों रोक रखी है।'

'हुजूर, अरब बहुत अधिक हैं। हमारी फौजें गिनती में कम है, इसलिए ज्यादा फौज चाहिए ऐसी सिपहसालार दिलावरखान ने पेशकश की है।' फौजी बोला।

सूबेदार बोला—'यह बात है, कितनी फौज चाहिए।'

'कम से कम पाँचसौ चाहिए' सिपाही बोला।

सूबेदार बोला—'इतनी फौज चाहिए, अरब कितने हैं?' सिपाही बोला—'ठीक तो नहीं बता सकता, लेकिन पाँच सौ से ज्यादा होंगे।'

अब सूबेदार को मामले की गंभीरता का अहसास हुआ। फौजी वर्दी पहनकर, घोड़ा बुलाकर खुद जवेरीवाडी की ओर चल पड़ा।

जवेरी मोहल्ले के चारों ओर खाइयाँ खोदी गईं और लकड़ी के ढाँचों पर रेत की गुनियाँ लगाकर अरब बन्दूकों से लैस होकर खड़े थे। देखकर वह सोचने लगा कि हुक्म की यदि तामील नहीं होती है तो उसकी प्रतिष्ठा कम होगी और वह हुक्म तो दे चुका था। अहमदाबाद में उस वक्त सिर्फ फौज में पाँच सौ से ज्यादा सैनिक नहीं थे। उन्हें वहाँ जाने का हुक्म दिया गया। शाही छावनी वहाँ बैठ गई। अहमदाबाद के चौक में संघर्ष की तैयारी होने लगी। नगरसेठ

अपनी बात पर दृढ़ थे, उधर सूबेदार भी अड़ा हुआ था। युद्ध की सम्भावना से शहर की प्रजा में घबराहट फैल गयी। शहर के बीच लड़ाई, जहाँ चारों ओर बाजार, घर, हवेलियां, मंदिर और मस्जिद आदि थे।

एक प्रहर में तो एक ओर शाही फौज और दूसरी ओर अरबों की फौज लड़ने के लिए तैयार हो गई।

सिपहसालार दिलावरखान सूबेदार के पास आकर सलाम करके बोला—'हुजूर, आपने देख लिया है कि अरब खाइयाँ खोदकर रेत की बोरियाँ सामने रखकर बैठे हैं। घुड़सवार उन पर हमला कैसे करेंगे। खाईस अरब अपनी फौज को बहुत नुकसान पहुँचा सकते हैं। अगर हम इन पर हमला करेंगे तो फौजी लिहाज से भूल ही होगी।

सूबेदार ने कहा—'तुम्हारी बात में समझ सकता हूँ। लेकिन इसमें रास्ता क्या निकल सकता है?'

दिलावरखान ने कहा—'सिवा तोपों के दागने के दूसरा कोई उपाय नहीं है।'

सूबेदार बोला—'तब तोपखाना मंगाओ।' हुक्म हुआ, चार तोपें मोर्चे पर लगा दी गईं। तोपों में दारू-गोले भरे जाने लगे। दूसरी तरफ दो अंग्रेजी तोपें मोर्चे पर लाकर लगा दी गईं और उसमें भी दारूगोला भरा जाने लगा।

बीच शहर में भयानक उत्पात खड़ा हो गया। बस्ती में जान-माल की बहुत हानि होने की सम्भावना बढ़ गई। शहर के महाजन सूबेदार के पास पहुँचे। बोले—'हुजूर, शहर के बीच गोले छूटेंगे। शहर की बस्ती और बाल-बच्चों का विनाश होगा।'

सूबेदार बोला—'इसमें मैं क्या कर सकता हूँ। तुम्हारा नगरसेठ

शाही हुक्म नहीं मानता। शाही हुक्म के सामने सभी को झुकना चाहिए। नहीं तो उसका नतीजा सबको भुगतना होगा।'

महाजन बोले—'आपका झगड़ा नगरसेठ के साथ है। उसमें शहर की आम प्रजा को सजा क्यों भुगतनी पड़ें? हमने बादशाही हुक्म को नहीं माना हो ऐसी बात नहीं। यह सजा हमको क्यों दी जाय?

'नगर सेठ की हवेली शहर के बीच में हैं। वह शाही फौज का सामना करे यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। उसे शिकस्त देना मेरा फर्ज ही है।' सूबेदार बोला।

महाजन बोले—'आपकी इस जिद्द में प्रजा का लाखों-करोड़ों का नुकसान होगा। यह खतरा उठाने जैसा नहीं है, आप इस मामले में दिल्ली से मशविरा कर लें।'

सूबेदार बोला—'मुझे दिल्ली से पूछने की जरूरत नहीं है। मेरे पास पूरी सत्ता है।'

तब हम क्या करें? आप हमें कुछ वक्त दें ताकि हम कहीं बाहर जाकर बस जायें। आप दोनों की लड़ाई में भयानक नुकसान होगा। शहर के बीच बाजार का विनाश होगा। आप कुछ सोचिए।

शहर का कोतवाल, मनसबदार, सिपहसालार सभी ने महाजनों की दरखास्त की ताइद की। सूबेदार विचार में पड़ गया।

'मैं तीन रोज की मोहलत देता हूँ। इस मुद्दत में या तो नगरसेठ शरण में आवे या शहर छोड़कर बाहर चले जायें। मुझे तो नगरसेठ का घमंड उतारना है। उसमें कोई फर्क नहीं हो सकता।'

महाजन नगर सेठ के पास पहुँचे। सेठ खुशालचन्द ने सबको सन्मान के साथ बैठाया। महाजन बोले—'शहर का सत्यानाश होने जा रहा है। कुछ उपाय कीजिए। आप नगर सेठ हैं। सूबेदार क्रुद्ध है।

सेठ बोले— मैं जानता हूँ। लेकिन एक बार झुकने पर हम पर वह सवार हो जावेगा। वह नासमझ नौजवान है। उसे मैं मनचाहा जुल्म करने नहीं दूंगा।

महाजन बोले—'लेकिन शाही फौज का मुकाबला करना क्या गुनाह नहीं समझा जावेगा? सत्ता के आगे जोर क्या?'

सेठ बोले—'मेरे हाथ लम्बे हैं, मैं इसका सामना कर सकता हूँ।'

महाजनों ने कहा—'यह तो हम जानते हैं। लेकिन आपका पहला फर्ज तो शहर को बचाना है, इसके लिए आप कोई ठीक रास्ता लें।'

सेठ ने कहा—'लेकिन वह तो जिद्दी आदमी है। मैं उसके सामने झुकना नहीं चाहता।'

वृद्ध साकरचन्द ने पूछा—'यदि कोई बीच का रास्ता निकले तो?'

नगरसेठ ने कहा—'आप क्या सुझाव देते हैं?'

साकरचन्द बोले—'आप अपनी फौज लेकर अहमदाबाद से बाहर चले जाँय। वहाँ सूबेदार लड़ने आवे तो आप अपनी वीरता दिखायें। वहाँ आपको कोई दूसरा उपाय करना हो करें, लेकिन शहर को बचाया जाय।'

नगरसेठ चिन्तन करने लगे—'लेकिन मेरी हवेली का कब्जा लेकर उसकी वह तोड़-फोड़ करे तब।'

महाजन बोले—'हम उसे समझावेंगे कि हवेली और मिल्कियत को हानि न पहुँचावे, फिर भी आपका नुकसान हो और शहर बचता हो तो आपको बचाना चाहिए। आपको अपनी हानि हमारे लिए बर्दाश्त करनी चाहिए।'

सेठ बोले—'ठीक है। आप लोगों के लिए मैं बर्दाश्त करूँगा।'

महाजन सूबेदार के पास गये, और कहा 'आप हवेली को अभय दान दे दें।'

सूबेदार बोला—'यह कैसे हो सकता है? वह शाही मिल्कियत हो जावेगी।'

महाजन ने कहा—'हुजूर चाहे वह शाही मिल्कियत हो जाय, लेकिन उसकी बर्बादी तो नहीं की जानी चाहिए।' सूबेदार ने कहा—'मैं उसे किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाऊँगा, लेकिन उस पर सरकारी कब्जा रहेगा। हमारे अफसर वहाँ रहेंगे।'

महाजन ने कहा—'दो महीने की मोहलत दीजिए। बाद में आप चाहे जो कर सकते हैं। हमारी इतनी अर्ज तो आपको मन्जूर रखनी चाहिए।'

सूबेदार ने स्वीकृति दे दी। नगरसेठ ने हवेली खाली करवाकर २१ रोज में वापिस आने का आव्हान दिया और अपने साथ अरबों की फौज लेकर सैकड़ों गाड़ियाँ सामान के साथ वे पेथापुर के पास वसाणा नामक ग्राम में जाकर निवास करने लगे।

सेठ खुशालचन्द ने तुरन्त बादशाह को अर्जी लिखवाई जिसमें पूरी स्थिति की जानकारी देकर सूबेदार के अन्यायपूर्ण हुक्म और उसे न मानने के कारण, सूबेदार द्वारा किये गये जुल्म के कारण अहमदाबाद छोड़कर जाने की बात पूरे ब्यौरे के साथ लिखकर अपने अहमदाबाद लौटने के लिए बादशाही मदद की मांग की। पहले के बादशाहत के साथ के सम्बन्धों और उसके लिए किये गये कामों का जिक्र किया। साथ ही साथ सैयद बन्धु हुसेनअली खाँ और अब्दुल्लाखाँ को भी लिखा। उधर सूबेदार की रिपोर्ट भी पहुँची। उन दिनों सैयदबन्धु बलशाली थे, सर्व सत्ताधीश थे। उनकी सलाह पर सूबेदार को दिल्ली बुलाया गया और हुसेनअली खाँ के शागिर्द को बादशाह के हुक्म के

साथ अहमदबाद भेजा। फरमान अहमदाबाद पहुँचा। सूबेदार चुपचाप दिल्ली के लिए रवाना हुआ और सेठ खुशालचन्द का बड़े ठाठ से अहमदाबाद में प्रवेश हुआ।

दिल्ली में फरुखशायर तो नाममात्र का बादशाह था। सब सत्ता सैयदबंधु के हाथ में थी। बादशाह के साथ उनका मनोमालिन्य हुआ। बादशाह ने अपने पक्ष में कुछ सरदारों को करके सैयदबंधुओं के नाश की योजना बनाई लेकिन सैयदबन्धुओं को खबर लग गई। उन्होंने मराठों की सहायता लेकर १७१९ में फरुखशायर की आँखों में गर्म सलाखें डालकर अंधा कर दिया और बाद में बहुत बुरी गत बनाकर उसका बध कर दिया गया तथा बहादुरशाह के पोते को गद्दी पर बिठाया गया। उनकी मृत्यु होने पर चौथे पुत्र को महमदशाह के नाम से गद्दी पर बैठाया। दिल्ली में उन दिनों बड़ी अन्धाधुंधी चल रही थी। दिल्ली की सत्ता शिथिल हो गई। दक्षिण के निजाम और मराठों की सत्ता प्रबल हुई। लूटपाट, अत्याचार और खून-खराबी का दौरा चल रहा था।

मुगल सल्तनत के गृहकलह तथा खून-खराबी की विषम स्थिति में गुजरात को दो कसौटियों में से पार उतरना था। सैयदबन्धुओं ने गुजरात से चौथ वसूली का मराठों को हक देने का आश्वासन देकर सहायता प्राप्त की थी और बादशाह फरुखशायर को हराया था। तब से मराठों की फौज गुजरात में चौथ वसूल करने के लिए 'हर-हर महादेव' की घोषणा करते हुए घूमती और शहरों तथा गाँवों पर आक्रमण करके लूटपाट करती। यदि लूट नहीं मिलती तो सैनिक गांवों में आग लगा देते।

दूसरी ओर से मुगल शहंशाह ने गुजरात में अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए निजाम-उल्मुल्क को सूबागिरी सौंप रखी थी और उसके

काका हमीदखान अहमदाबाद में रुके हुए थे। गुजरात की स्थिति दो पतियों की पत्नी की तरह बड़ी ही विषम थी। सेठ खुशालचन्द समयज्ञ थे। उन्होंने परिस्थिति को ध्यान में लेकर अरबों की सेना में वृद्धि की थी और शस्त्र सामग्री भी ठीक मात्रा में एकत्र कर रखी थी।

इस प्रकार चार-पाँच साल बीते। इस बीच मुगल बादशाह ने देखा कि गुजरात की सत्ता हाथ से जा रही है। दिल्ली के सरदारों ने बादशाह को समझाया कि सूबेदार हमीदखान और मराठे मिल गये हैं, इसलिए शाह बुलन्दखान को सूबेदार नियुक्त किया गया। शाह बुलंदखान ने अपनी ओर से सुजादीखान को फौज के साथ गुजरात में भेजा।

हमीदखान ने देखा कि सुजादीखान के पास फौजी ताकत ज्यादा है। वह मराठों की सहायता से दोहद पहुँचा और सुजादीखान का सामना किया, जिसमें सुजादीखान मारा गया।

वैसे अहमदाबाद में किलाबन्दी थी। दरवाजे बन्द करने पर बाहर के हमले से बचा जा सकता था, लेकिन मराठों में विजय की धुन में अहमदाबाद को लूटने की इच्छा जागृत हुई।

खुशालचन्द सेठ को यह पता लगा कि मराठे अहमदाबाद लूटना चाहते हैं। किला फतह करके शहर में प्रविष्ट होना चाहते हैं। उनके पास लड़ने के साधन और सामग्री रहते हुए भी उन्होंने राजनीति से काम लेना अधिक उचित समझा। मराठा फौज को लाने वाले हमीदखान पर उनका बहुत प्रभाव था। उस पर उन्होंने बहुत उपकार किये थे। उन्होंने साहस कर मराठों की छावनी में प्रवेश किया। मराठा फौज अहमदाबाद पर घेरा डाले हुए थी। वे हमीदखान से मिले। लूट में प्रजा की तबाही होगी इसलिए मराठों के साथ बातचीत कर उन्हें लूट न करने को समझाने का प्रयास किया और उन्हें काफी मात्रा में अपने निज के पास से धन देकर घेरा उठवाया।

खुशालचन्द सेठ ने तन-मन-धन से शहर की रक्षा की। इस बात से प्रभावित होकर अहमदाबाद के हिन्दू और मुस्लिम व्यापारी एकत्र हुए और खुशालचन्द सेठ के इस उपकार के बदले के रूप में होने वाले व्यापार तथा निर्माण होने वाले मशरू आदि माल पर सैकड़ा चार आना वंश परम्परागत कर देने का निर्णय किया। यह जो करारनामा किया, उस पर वजीर कमरुद्दीन ने तसदीक करके रुक्का सेठ परिवार को दिया। आगे चलकर अंग्रेजों ने इस रकम को साल में २१३३ रुपये देना प्रीवी कौंसिल के ३१-५-१८६१ के प्रस्ताव के अनुसार तय किया। अंग्रेजों के राज्य में वह रकम सेठ परिवार को मिलती थी। अन्तर विग्रह के कारण मुगलसत्ता कमजोर बनी और मराठों का चौथ वसूली के नाम पर गुजरात में प्रवेश हुआ।

पेशवाओं ने गुजरात प्रदेश के कार्य को पिलाजी गायकवाड को सोंपा। उनके पुत्र दामाजी गायकवाड ने अपने शौर्य और चातुर्य से गुजरात में सत्ता स्थापित की और मुगल सत्ता घटती गई।

नगरसेठ खुशालचन्द बड़े समयज्ञ और चतुर थे। उन्होंने मराठों के साथ भी आर्थिक सम्बन्ध स्थापित किये और मैत्री की, जिससे उनके हितों की रक्षा हो सके। इस अन्धाधुन्धी और लूटपाट के समय में व्यापार करना बहुत जोखिम भरा हो गया था और घट भी गया था। नगरसेठ का लेन-देन का काम बहुत व्यापक था और बड़े पैमाने पर चलता था। राजतंत्र बदलने पर काफी रुपया डूब भी जाता था। कई बार तो पूरी की पूरी रकम ही डूब जाती, पर सेठ परिवार वाले नई सत्ता का साथ लेकर पहली रकमें भी कई बार वसूल कर लेते थे।

4

सेठ बखतशाह

सेठ खुशालचन्द के बाद उनके पुत्र बखतशाह नगर सेठ बने। मुगल और मराठा दोनों सत्ताओं ने इन्हें मान्यता दी थी। बखतशाह के समय में स्थिति बहुत नाजुक और विषम थी। क्योंकि उन्हें दोनों सत्ताओं को राजी रखना पड़ता था किन्तु बखतशाह ने अपने पिता खुशालचन्द से राजनैतिक क्षेत्र में शिक्षा प्राप्त की थी, इसलिए वे चतुर राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने दामाजी गायकवाड के साथ जौहरी का सम्बन्ध बनाकर बड़ौदा में भी पेढी स्थापित की थी। गायकवाड राज्य से भी इन्हें छत्र, मशाल तथा पालकी का सन्मान प्राप्त था। इन्होंने पालीताणा, गिरनार तथा आबू के बहुत बड़े यात्रा संघ निकाले थे। जिसमें गायकवाड राज्य की तरफ से सैनिक संरक्षण प्राप्त हुआ था। इन्होंने काठियावाड के राजाओं को भी कर्ज देना शुरू किया। कर्ज के ऐवज में उनके गांव गिरवीं रख लेते। काठियावाड़ के बड़े राज्यों के साथ इस जौहरी-परिवार के सम्बन्ध गहरे होने लगे थे। उन दिनों बैंकों का प्रचलन नहीं था। अतः साहूकारों की ओर से कर्ज लिया जाता था। सम्पूर्ण गुजरात में जौहरी-नगरसेठ ही सबसे बड़े सराफ थे, जिनका लेन-देन गुजरात ही नहीं, दिल्ली तक चलता था। अकबर, जहाँगीर, शहाजहाँ, औरंगजेब, बहादुरशाह, जहांदरशाह, फरुखशायर तक सभी बादशाहों को इन्होंने कर्ज दिया था। गायकवाड़ को भी कर्ज देते थे।

बखतशाह के बड़े भाई नथुशाह भी अहमदाबाद में रहते थे। उनका भी राजनीति तथा व्यवसायियों में खूब प्रभाव था और सार्वजनिक कामों में हिस्सा लेते थे।

गुजरात का राजतंत्र पेशवा तथा गायकवाड के अधीन था। व गुजरात तथा सौराष्ट्र में चौथ की वसूली करते थे। जगह-जगह अनेक थाने थे। आहिस्ता-आहिस्ता अंग्रेज सत्ता का उदय होने लगा। मराठों में अन्तर-कलह का प्रारम्भ होने पर अंग्रेजों को दखल देने का मौका मिला और १७८० में अहमदाबाद में अंग्रेजी सत्ता के पैर जम गये। इस समय नथुशाह सेठ तथा महाजनों ने कम्पनी सरकार के सेनापति से मिलकर उनको यह समझाया था कि पेशवाओं के साथ होने वाले झगड़ों में कम्पनी सरकार की फौज की ओर से प्रजा की लूट-पाट न हो।

बम्बई में भी अंग्रेजी सल्तनत स्थापित हुई। पोर्तुगीज राजा की बहन की शादी ब्रिटेन के राजा के साथ हुई। दहेज में बम्बई द्वीप अंग्रेजी राजा को दिया गया। अंग्रेज राजा ने बम्बई बन्दर वार्षिक दस पौंड किराये से ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दिया। विलायत से माल के आयात-निर्यात के लिए यह बन्दरगाह सुविधापूर्ण था। अतः अंग्रेजों की सूरत स्थित बड़ी-बड़ी पेढियां बम्बई पहुँची। बम्बई का व्यापार बढ़ने लगा। कुछ ही दिनों में बम्बई पश्चिम का सबसे बड़ा बन्दरगाह हो गया। जहां कुछ मच्छीमारों की बस्ती थी, वहाँ लाखों की आबादी हो गयी। बखतशाह सेठ ने बम्बई में भी अपना कारोबार शुरू किया।

सेठ बखतशाह का समय मुगल, मराठा, गायकवाड और अंग्रेज आदि सत्ता की स्थापना का समय था। सेठ बखतशाह ने बड़ी

कुशलता से राज्यों के सम्बन्ध, व्यापार और नगरसेठ का सन्मान सुरक्षित रखा।

सेठ बखतशाह के पुत्र मोतीचन्द, मोतीचन्द के पोते भगुभाई तथा उनके पुत्र दलपत भाई थे जो सेठ कस्तूरभाई के दादा थे। श्री दलपत भाई के पुत्र तथा श्री कस्तूरभाई के पिता का नाम श्री लालभाई था।

5

सेठ हेमाभाई

सेठ बखतचन्द के बाद उनके पुत्र हेमाभाई नगरसेठ हुए। वे अंग्रेजी तो नहीं सीख पाये, किन्तु फारसी सीखे थे। व्यवहार कुशल थे, संस्कार-सम्पन्न थे। वे सहनशील, उदार तथा धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे।

सेठ का परिवार बहुत विशाल था, उन्होंने सभी को कामों की जिम्मेवारी बांट दी थी और प्रत्येक के खर्च की समुचित व्यवस्था कर दी थी। परिवार के अतिरिक्त वे सामाजिक स्थानों और तीर्थों की व्यवस्था करते, पांजरापोल आदि की देखरेख भी रखते। सारा परिवार उनके अनुशासन में सुचारू रूप से चलता था। समाज में भी उनका प्रभाव था।

जवाहरात का व्यापार गौण होकर सराफी और लेन-देन का काम ही प्रधान हो गया था। राजाओं तथा जागीरदारों के गांव आदि रेहन रखकर उन्हें कर्ज देते। हेमाभाई के समय अंग्रेजों का शासन हो गया था। सरकार की इजाजत के बिना कोई गांव बेच नहीं सकता था, पर उसकी आमदनी गिरवी रखी जा सकती थी। पूरे भारत में उनकी शाखाएँ थीं और आढ़तिये नियुक्त थे। बैंक सिर्फ बम्बई और कलकत्ते में ही थीं। इसलिए लेन-देन और हुण्डियां इन्हीं की चलती थीं। इनकी पेढ़ियों (शाखाओं) द्वारा भारत के साहूकारों

और राजा-रजवाड़ों को बड़ी-बड़ी रकमें कर्ज के रूप में दी जाती थीं। इनकी हुण्डी की साख पूरे गुजरात में नोट की तरह प्रख्यात थी। परिवार की एकता आदर्श थी। भोजन की पंक्ति में डेढ़ सौ व्यक्ति एक साथ बैठते। वे सब का ध्यान रखते थे।

अहमदाबाद पर अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हो गई थी, इसलिए संरक्षण के लिए अरबों की सेना और हथियारों का खर्च कम कर दिया था। हाँ, घोड़ागाड़ियाँ, घोड़े, बैलगाड़ियाँ, आदि रखी गयी थीं। उन्होंने शजुंजय, गिरनार और आबू के यात्रा संघ भी निकाले थे।

हेमाभाई परोपकारी और दानी थे। नियमित देव-दर्शन और साधु-साध्वियों की सेवा में पहुँचते। उन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक परम्परा में वृद्धि ही नहीं की, व्यापार में भी बहुत प्रगति की और सार्वजनिक कामों में भी दिल खोलकर खर्च करते रहते थे।

अँग्रेज अधिकारियों ने शिक्षा के क्षेत्र में शुरू किये गये कामों में तथा नगरपालिका में नेतृत्व किया था। उन्हें मंदिर, धर्मशालाएँ, आश्रयस्थान का निर्माण कराने में काफी रुचि थी। स्थापत्य कला के जानकार थे। अहमदाबाद ही नहीं मातर, सरखेज, नरोड़ा, मेधापुर आदि अनेक गाँवों में मंदिर बनाये। वे मंदिर बनाने के निमित्त से या तीर्थयात्रा के लिए जहाँ भी जाते वहाँ सार्वजनिक जरूरतें पूरी करते। जूनागढ़ में हेमाभाई ने धर्मशाला बनाई थी।

पालीताणा का राज्य उनके इशारे में था। वे राज्य की व्यवस्था करते थे। अपने शासन में उन्होंने सिद्धाचल पर टोंक बनवाई थी जो 'हिमावसी' के नाम से प्रसिद्ध है। और उनकी बहन ने बहुत खर्च करके 'नंदीश्वरजी की टोंक' निर्मित करायी जो 'उनमफईनी टुंक' के नाम से प्रसिद्ध है।

उनकी हवेली महल जैसी विशाल थी। उस समय वह सबसे बढ़िया इमारत थी। माणिक चौक से नागोरी सराह तक लम्बी और रतनपोल से पीरमशाह के रोजा तक चौड़ी थी।

सेठ हेमाभाई अपनी बम्बई की शाखा में गये तब बम्बई के समाज द्वारा उनका बहुत सन्मान हुआ था और इस प्रवास में बम्बई के संघपति मोतीशा के साथ जो मित्रता हुई, वह अन्त तक बनी रही।

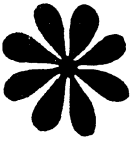

धर्मप्राण सेठ लालभाई दलपतभाई

6

सेठ लालभाई

सेठ लालभाई को परम्परा या सेठ शांतिदास तथा उनके वंश के कई विशिष्ट व्यक्तियों की विशिष्टताएँ विरासत में मिली थीं। साथ ही उनमें समय की रफ्तार को समझने की दूर-दृष्टि भी थी। फलस्वरूप जब उन्होंने अपने समय की शिक्षा, समाज कार्य, उद्योग-व्यवसाय में प्रवेश किया तो सेठ शांतिदास का धर्मप्रेम, साहस राज्य-कर्त्ताओं के साथ सम्पर्क, समाज के प्रति वात्सल्य, तीर्थ-सेवा, सुरक्षा आदि कार्यों व परम्परा से प्राप्त विशेषताओं का भी पूरा उपयोग किया और परिवार के विकास की नींव डाल सके। आज कस्तूरभाई का उद्योग समूह देश के प्रमुख उद्योगों में जो महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है तथा उसने जैसा विकास किया है उसकी नींव सेठ लालभाई ने ही रखी थी। सेठ शांतिदास के परिवार का व्यवसाय जवाहरात का था और लेन-देन सराफा, बैंकिंग का था। बीच में सेठ परिवार में शेअर के सट्टे ने स्थान पा लिया था, परन्तु लालभाई ने इन व्यवसायों का भविष्य उज्ज्वल न देखकर वस्त्र उद्योग को अपनाया। उनकी बुद्धि शिक्षा से व्यापक बन गई थी। उन्होंने देखा कि साहस पूर्वक नया उद्योग अपनाए बिना वे अपने परिवार के उच्च स्थान को टिका नहीं पावेंगे इसलिए उन्होंने टेक्सटाइल कपड़े के उद्योग को अपनाया।

उनका जमाना इतना मन्दी का तथा पराधीनता का था कि मिल उद्योग का प्रारम्भ कर उसमें सफलता पाना आसान नहीं था।

विदेशी सरकार का झुकाव अपने देशवासियों के हित की ओर अधिक था। वे लोग भारत से कपास (कच्चा माल) अपने देश में ले जाकर वहाँ का बना कपड़ा भारत में लाकर बेचते थे। भारत उनके लिए सोने का अंडा देने वाली मुर्गी की तरह लाभदायी क्षेत्र था। भारत की सम्पत्ति का प्रवाह इंग्लैण्ड की ओर बह रहा था।

अन्न के बाद जीवन में सबसे आवश्यक स्थान कपड़े का था और है। अंग्रेजों ने यंत्रों और तकनीकी ज्ञान के विकास के द्वारा इस उद्योग का ऐसा विकास किया कि भारत में चर्खे और करघे से बने कपड़े की अपेक्षा विदेशी कपड़ा सस्ता पड़े और देखने में भी अच्छा लगे। बम्बई व अहमदाबाद के उद्योगपतियों ने अनुभव किया कि यदि हम यंत्र का उपयोग और आधुनिक टेकनिक नहीं अपनाते हैं तो मेनचेस्टर का मुकाबला नहीं कर सकेंगे। इसलिए वस्त्रोद्योग के लिए मिलें खोलीं। प्रारम्भ की कठिनाइयाँ, परिश्रम, व्यवहार-कुशलता तथा साहस से दूर की। उस समय की औद्योगिक और व्यावसायिक परिस्थिति को समझे बिना, जनमानस का निरीक्षण किए बिना पूर्वजों ने जो कार्य किया उसका हम सही मूल्यांकन नहीं कर सकेंगे। उस समय नये उद्योग शुरू करने का खतरा उठाने की अपेक्षा विदेशी माल अपने देश में लाकर बेचना आसान था और उसमें तत्कालीन लाभ भी अधिक था। इसके बावजूद जिन्होंने देश में नये उद्योगों की नींव डालने का साहस किया उन्होंने देश और समाज की बहुत बड़ी सेवा की, जिसकी आज ठीक कल्पना भी नहीं की जा सकती।

वैसे तो मिल उद्योग की शुरूआत गुजरात में १८५३ में जेम्स लेंडन ने भरुच काटन मिल की स्थापना से की थी। अहमदाबाद में रणछोड़लाल छोटालाल ने १८५८ में कम्पनी स्थापन कर इंग्लैंड में दादाभाई नवरोजी के द्वारा यंत्रों की खरीदी की और वे यंत्र खंभात

से अहमदाबाद बैलगाड़ियों से लाये गए। उन दिनों बम्बई से अहमदाबाद रेलमार्ग से जुड़ा हुआ नहीं था। पहली मशीनरी तो रास्ते में जलगई थी। यह मशीनरी दूसरी बार आर्डर देकर खम्बात बन्दर में उतारी गई। अहमदाबाद में मशीनरी आकर १८६१ में मई मास में मिल चालू हुई। क्योंकि खम्बात से बैलगाड़ियों में मशीनरी अहमदाबाद पहुँचने में चार महीने लगे। लेकिन पहले वर्ष की कम्पनी ने ६ प्रतिशत डिविडंड दिया। यह बहुत छोटी मिल थी जिसमें २५०० तकुए थे और सिर्फ ६३ लोग काम करते थे। ई० सं० १८६५ में बेचरदास अंबादास ने बेचरदास मिल शुरू की १८७७ में माधुभाई मिल जो आगे चल कर अहमदाबाद स्पीनिंग एण्ड मेन्युफैक्चरिंग मिल श्री रणछोड़लाल ने शुरू की बाद में १८७८ में 'दि गुजरात स्पिनिंग विनिंग मिल' स्थापित हुई। प्रारम्भ की चार मिलों में से सिर्फ बेचरदास मिल ही अब तक चल रही है, शेष बन्द हो गईं।

प्रारम्भ में मिलें मोटा सूत निर्माण कर बाजार में बेचतीं। जब कपड़ा बनाना शुरू किया तो मोटा कपड़ा और साड़ी धोतियाँ भी २० काउंट से नीचे सूत की रहती। कुछ सूत चीन में जाता। ई० १९०० तक अहमदाबाद में कपड़ा उद्योग की स्थिति सुदृढ़ बन गई थी ऐसा कहा जा सकता है तब तक २७ मिलें यहाँ हो गई थीं और १५९४३ मजदूर काम करते थे।

लालभाई सेठ ने १८९६ ने ही सरसपुर मिल शुरू कर इस उद्योग में प्रवेश किया था और १९०३ में रायपुर मिल की स्थापना की। पिछले सात वर्षों में उन्होंने इस उद्योग में जो सफलता पाई उससे रायपुर मिल के शेयर्स २५० ढाई सौ रुपया प्रिमियम से बिके।

जैसे इंग्लैंड में मेनचेस्टर ने कपड़ा उद्योग में महत्त्वपूर्ण स्थान पाया था वैसे ही भारत में अहमदाबाद के कपड़ा उद्योग में कस्तूरभाई

के उद्योग समूह ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। जिसका प्रारम्भ सेठ लालभाई ने किया था, उसका ऐतिहासिक मूल्य है।

सेठ लालभाई के परिवार का जैनधर्म और समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और है। जैन समाज पर साधुओं का अत्यधिक प्रभाव रहा है। जैन साधु कल-कारखाने को महाआरम्भ—बड़े पाप का काम समझते थे इसलिए मिल खड़ी करने में सेठ लालभाई को कठिनाई नहीं आई हो ऐसी बात नहीं, पर उन्होंने मिल खड़ी करने का साहस किया और गुजरात के जैनियों को इस उद्योग को अपनाने की प्रेरणा दी, जबकि मारवाड़ के कई प्रसिद्ध धनी जैनी परिवार विलायती कपड़ा मँगाकर बेचने का काम करते थे। वे चाहते तो मिलें खोल सकते थे पर उनके गुरुओं ने इस कार्य को महाआरम्भ का काम बता कर उद्योगों की अपेक्षा व्यवसाय करने को ही प्रेरणा दी। फलस्वरूप गुजरात के जैन उद्योग के क्षेत्र में मारवाड़ के जैनियों से बहुत आगे है।

आनन्दजी कल्याणजी पेढी के विधान के अनुसार ट्रस्ट का अध्यक्ष नगर सेठ के परिवार का होना चाहिए था। मयाभाई नगर सेठ की मृत्यु के बाद उनके पुत्र छोटी उम्र के थे अतः सेठ लालभाई आनन्दजी कल्याणजी की पेढी के अध्यक्ष हुए। पेढी के अध्यक्ष चुने जाने के बाद जूते पहनकर शत्रुंजय पहाड़ पर जाने से होने वाली अशातना को रोकी। भाईणी तीर्थ उन्हीं के समय में अस्तित्व में आया और राणकपुर तथा गिरनार की व्यवस्था आनन्द जी कल्याणजी पेढी को सौंपी गई।

उनकी तीर्थों सम्बन्धी भक्ति सराहनीय थी। जब १९०८ में सम्मेदशिखर पहाड़ पर सरकार ने निजी बंगले बनाने की इजाजत दी तो पूरे जैनसंघ में क्षोभ उत्पन्न हुआ। ऐसे समय लालभाई सेठ चुप न रह सके। समाज के प्रमुख नेताओं के साथ रहकर बंगले

बनने को रोकने में सफलता प्राप्त की लेकिन वहाँ गिर गये जिससे हाथ की हड्डी टूट गई। उन्हें कलकत्ता चिकित्सा के लिए जाना पड़ा। वहाँ बाबू माधवलालजी दूगड़ के यहाँ तीन मास तक रहना पड़ा।

तीर्थ-रक्षा के क्षेत्र में उनका एक काम सदा संस्मरणीय रहेगा। वह कार्य था आबू के जैन मन्दिरों को आर्कियोलोजिकल डिपार्टमेंट में जाने से रोकना। लार्ड कर्जन आबू गए वहाँ की शिल्पकला और खुदाई से वे बड़े प्रभावित हुए। इस प्राचीन वास्तु व शिल्पकला को 'सुरक्षा के लिए' आर्कियालोजिकल डिपार्टमेंट को सौंपने का प्रस्ताव किया। इसका लालभाई सेठ ने प्रबल विरोध किया और मन्दिर सरकारी कब्जे में जाने से रोका। उन दिनों वाइसराय के कथन या विचार का विरोध करना बड़े साहस का कार्य था। सुरक्षा का प्रबन्ध करने के लिए आनन्दजी कल्याणजी पेढी में पैसा तो था नहीं पर ८-१० साल तक कुछ कारीगरों को रखकर यह बहाना बनाते रहे कि हम इस तीर्थ की बहुत अच्छी देखभाल कर रहे हैं।

लालभाई सेठ ने कालेज की शिक्षा प्राप्त की थी शिक्षा के लाभों से अपने व्यक्तित्व और परिवार का अद्‌भुत विकास किया था। वे विद्या प्रेमी, शिक्षा के समर्थक थे उन्होंने माताजी की स्मृति में जवेरी वाड में कन्याशाला स्थापित की थी। तीर्थ सेवा के अतिरिक्त भी धार्मिक और सेवा के कामों में हिस्सा लेते थे। वे समय की पाबन्दी, नियम पालन और अनुशासन को बड़ा महत्व देते थे। उन्हें अविनय, अव्यवस्था और उद्‌दंडता पसन्द नहीं थी। परिवार वालों पर ऐसी धाक थी कि कोई वैसी बात करने का साहस नहीं कर सकता था। बच्चों पर उनका आतंक था। लालभाई स्वयं नियम के और अनुशासन पालन के साथ-साथ बच्चों में भी वह आदत डालना चाहते। स्वयं कस्तूरभाई अपने अनुभव सुनाते समय कहते हैं कि नियम पालन व समय के पाबन्दी की शिक्षा पिताजी से मिली।

लालभाई धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न थे। खानपान के मामले में वे बहुत ही कट्टर थे किन्तु शिक्षा के कारण विचारों में व्यापकता थी। उन्होंने अच्छी बातें अंग्रेजों की अपनाई थी पर पाश्चात्य सभ्यता की बुरी बातों के लिए उनके जीवन में कोई स्थान नहीं था। समाज में शिक्षा का प्रसार हो और वह कुरीतियों से बचकर कामों में दिलचस्पी ले इसलिए जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस का प्रधानमंत्री पद का दायित्व स्वीकार किया और गुजरात सौराष्ट्र आदि क्षेत्रों में अनेक शुभ प्रवृत्तियाँ शुरू कीं। वे श्वेताम्बर जैन कान्फ्रेंस के प्रारम्भ से ही गुलाबचन्द जी ढड्डा के साथ महामंत्री थे ही, पर कान्फ्रेंस की स्थापना में जिन व्यक्तियों ने साथ दिया उसमें लालभाई भी एक थे। ढड्डाजी जब अहमदाबाद आये तो उन्होंने चर्चा के लिए बुलाई मीटिंग में प्रमुख रूप से हिस्सा लिया था।

कान्फ्रेंस द्वारा प्राचीन शिलालेखों के विषय में अधिक सावधानी रखी जाय और शिल्प-कला के शोध में सरकार से सहयोग लेने तथा ऐतिहासिक प्रमाणों व साधनों का उचित उपयोग करने, तथा संग्रह की बात की थी।

लालभाई सेठ संस्था के पद और दायित्व को कार्य की दृष्टि से मानते थे, केवल शोभा की वस्तु नहीं। इसलिए जब उनकी औद्योगिक प्रवृत्तियाँ बढ़ीं और कान्फ्रेंस के कार्य के लिए पर्याप्त समय नहीं दे पावेंगे ऐसा लगा तो महामंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। भावनगर के दीवान ने भी इस पद पर रहने के लिए आग्रह किया, पर पद पर न रहकर भी कान्फ्रेंस द्वारा सूचित रचनात्मक कार्यों में योगदान देते रहे।

अपने परिवार की सांपत्तिक स्थिति दृढ़ बनाने में काफी परिश्रम किया। बड़े साहस और धीरज के साथ प्रयत्न किया। अपने पुरुषार्थ

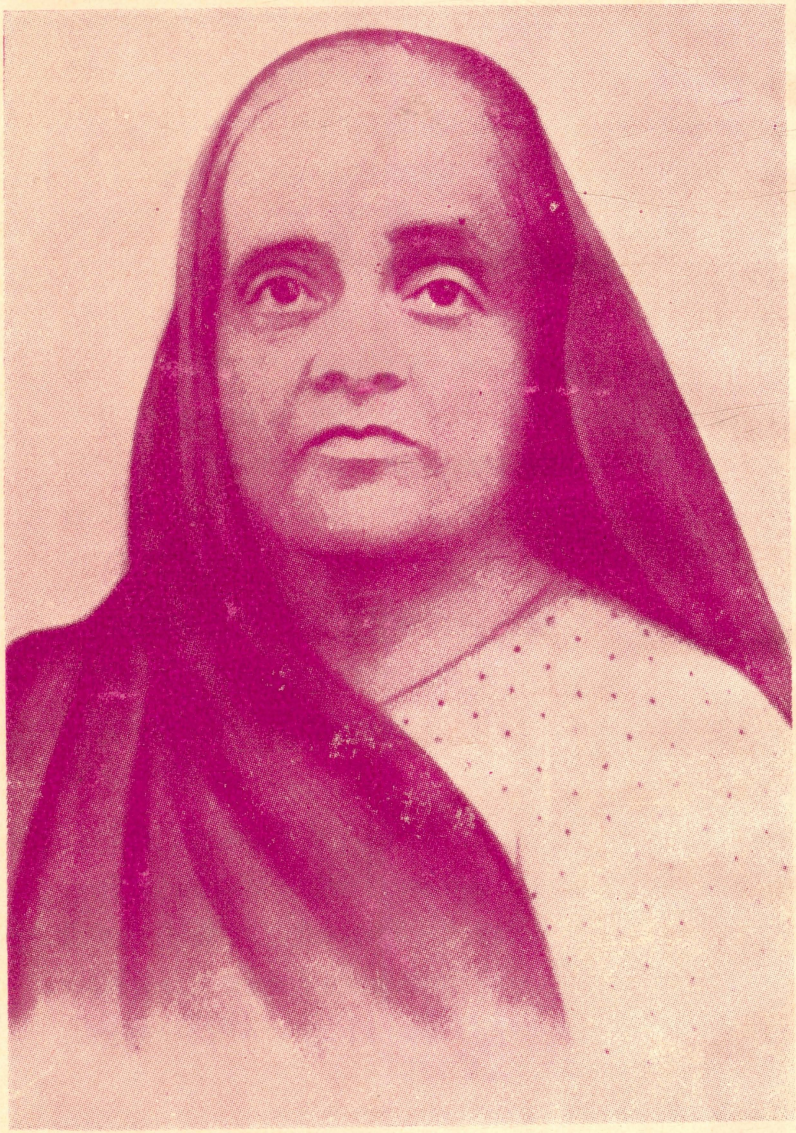

धर्मशीला सेठानी मोहिना बा

से कपड़े के मिल का प्रारम्भ किया, सफलता प्राप्त हुई। दूसरी मिल की भी स्थापना की।

उन्होंने आर्थिक उन्नति के साथ-साथ सत्कार्यों में धन का उपयोग करने लगे। तीर्थयात्रा, संघ-सेवा और लोक-कल्याण में उसका उपयोग करते। पिताजी के स्मरणार्थ धर्मशाला का निर्माण किया।

उनकी समाज और व्यापारी क्षेत्रों में बड़ी प्रतिष्ठा थी। सरकार की ओर से उन्हें सरदार की उपाधि प्राप्त थी इस प्रकार वे धन, प्रतिष्ठा और कुटुम्बियों से भरपूर थे। घर में ४० लोग एक साथ बैठकर भोजन करते। पर जीवन के अन्तिम समय में भाई अलग हुए। जिसका उन्हें रंज रहा पर अलग होते समय भाईयों ने जो चाहा सो देकर निपटारा इस प्रकार किया कि प्रेम बना रहे। सरसपुर मिल अपने भाइयों को दी।

घर के लोगों में बड़ों के प्रति आदर व भक्ति रहे इसका वे खुद आचरण करते, चाहे काम में कितनी भी रात हो जाय माता को नमस्कार कर पैर दबाये बिना सोने नहीं जाते। उनका मानना था कि यदि परिवार में परम्परा बनाये रखनी हो तो स्वयं आचरण करना चाहिए। वे अत्यन्त संस्कार सम्पन्न थे।

ऐसे पुरुषार्थी व कर्तृत्वशाली लालभाई सेठ की अकस्मात् हृदय-गति रुक जाने से मृत्यु हुई तो परिवार को बड़ा आघात लगा। लेकिन उनकी पत्नी मोहिनाबा अत्यन्त व्यवहार कुशल, तेजस्वी और समझदार थी। उन्होंने घर की व्यवस्था तो कुशलतापूर्वक सम्भाली ही थी पर व्यवसाय को भी ठीक से सम्भाल सके ऐसी उनकी योग्यता थी। वे घर खर्च का पैसे-पैसे का हिसाब ठीक से लिखती थीं यहाँ तक कि १९३२ में जब उनका स्वर्गवास हुआ उस रोज का हिसाब तक उनके हाथ से लिखा हुआ मिलता है। उन्होंने अपनी संतान में

उचित संस्कार व जीवनोपयोगी गुणों का विकास किया था। वे अपने पुत्रों की योग्यता ठीक से जानती थी इसलिए कस्तूरभाई को कालेज छुड़वाकर अपने उद्योग में लगाया और सेठ लालभाई की परिवार को पहुँची क्षतिपूर्ति करने के काम में लगाया। उस समय सेठ लालभाई का कार्य और कीर्ति वे कैसे सम्भाल पावेंगे ऐसा स्वयं कस्तूरभाई सेठ को ही लगता था पर मोहिनाबा की परीक्षा ठीक थी। कस्तूरभाई ने सच्चे सपूत की तरह बाप से बेटा सवाया बनकर जो काम किया वह जैन समाज के लिए तो गौरवपूर्ण है ही, राष्ट्र निर्माता के रूप में जो कपड़ा उद्योग और तत्सम्बन्धी उद्योगों में प्रगति की वह परिवार और समाज की कीर्ति को बढ़ाने वाली है।

□ □ □

प्रसिद्ध उद्योगपति, धर्म-परायण सेठ श्री कस्तूरभाई लालभाई के पूर्वज महान् धार्मिक, तीर्थरक्षक सेठ शांतिदास का जीवन इन्द्र-धनुष की तरह सतरंगा व सुहावना था।

साहस, निर्भीकता, व्यापारिक सूझ-बूझ, वचन-चातुर्य, धार्मिक-दृढ़ता, उदारता और स्व-धर्म-जाति एवं देश का स्वाभिमान आदि ऐसे गुण थे उनके व्यक्तित्व में, जिनसे मुगल सम्राट अकबर, जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगजेब सदा प्रभावित रहे।

पढ़िये—उस महापुरुष का जीवनवृत

□ □ □

आवरण : मोहन मुद्रणालय, आगरा-२